संख्याओं से परे का सच

दो बच्चों की नीति के प्रभाव

समा
महिलाओं और स्वास्थ्य के लिए संदर्भ समूह

12777
CLIC-
CPHE

SOCHARA
Community Health
Library and Information Centre (CLIC)
Centre for Public Health and Equity
No. 27, 1st Floor, 6th Cross, 1st Main,
1st Block, Koramangala, Bengaluru - 34
Tel : 080 - 41280009
email : clic@sochara.org / cphe@sochara.org
www.sochara.org

संख्याओं से परे का सच

दो बच्चों की नीति के प्रभाव

समा

महिलाओं और स्वास्थ्य के लिए संदर्भ समूह

इस पुस्तिका में प्रदान की गयी जानकारी व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए है और कोई भी समा के प्रति आभार व्यक्त करते हुए इसका प्रयोग कर सकता है।

प्रकाशन : 2006

प्रकाशित :

समा– महिलाओं और स्वास्थ्य के लिए संदर्भ समूह
जी–19, दूसरी मंजिल, मार्ग–24,
साकेत, नई दिल्ली–110017
ई–मेल : sama_womenshealth@vsnl.net

सज्जा और कवर : रंजन डे, ऋत्विक डे, शफी

मुद्रक :
इम्पलसिव क्रिएशंस
8455, सेक्टर–सी, पॉक्टे–8,
वसन्त कुंज, नई दिल्ली – 110070

HP-125
12777

विषय–सूची

	आभार	
	प्रस्तावना	1
अध्याय 1	जनसंख्या नीतियां : कुछ खास बातें	4
अध्याय 2	संदर्भ, अध्ययन की रूपरेखा और पद्धतिशास्त्र	18
अध्याय 3	नतीजे	27
अध्याय 4	मीडिया और न्यायपालिका की भूमिका	59
	निष्कर्ष	64
	संदर्भ	71

आभार

सबसे पहले हम सभी सरपंचों, पंचों और दूसरे पंचायत सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करना चाहेंगे, जिन्होंने इस अध्ययन में हिस्सा लिया। हम आशा करते हैं कि हम उनकी तकलीफ, गुस्से और अपमान को स्वर देने में सफल रहे हैं। हम उन ग्रामीणों के भी विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने फोकस ग्रुप चर्चाओं में हिस्सा लिया और अपनी राय जाहिर की।

हम मध्यप्रदेश भारत ज्ञान विज्ञान समिति (एमपी बीजीवीएस) के प्रति आभार प्रकट करना चाहेंगे जिन्होंने हमें अध्ययन शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया और हर संभव तरीके से हमें निरंतर सहयोग प्रदान किया। हम आशा मिश्रा के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने फील्डवर्क में हमारी सहायता की।

इसके अलावा हम मध्यप्रदेश जनस्वास्थ्य अभियान और मध्यप्रदेश विज्ञान सभा के अजय खरे के प्रति भी समा को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए आभार व्यक्त करते हैं।

फील्ड स्टडी का संयोजन करने के लिए नीति दीवान के प्रति हमारा हार्दिक आभार। फील्डवर्क को पूरा करने में इस बारे में उनका अनुभव और अंतदृष्टि हमारे लिए बेशकीमती थी। फील्ड इन्वेस्टीगेटर के रूप में चंपालाल और राकेश के प्रति विशेष रूप से आभार। फील्ड इन्वेस्टीगेशन के दौरान मुश्किलों से पार पाने का उनका साहस अद्वितीय था। हम परियोजना की अवधारणा प्रस्तुत करने, योजना बनाने और समन्वय करने के लिए समा से जुड़ी पारुल सारस्वत और एनबी सरोजिनी के निरंतर जारी प्रयासों के प्रति आभार जाहिर करते हैं।

हम एकलव्य, देवास और एकलव्य भोपाल की लोरी बेंजामिन, अनु गुप्ता, शोभा के प्रति उनके निरंतर नैतिक समर्थन और प्रोत्साहन के लिए आभार व्यक्त करना चाहेंगे।

हम इस मुद्दे पर अपने द्वारा बुलाये गये पत्रकार सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए बृंदा करात, अमित सेन गुप्ता, कोलिन गोंजाल्वेस के प्रति अत्यंत कृतज्ञ हैं।

मेडिको फ्रेंड सर्कल और जन स्वास्थ्य अभियान के दूसरे सभी मित्रों के प्रति आभार।

रुपसा मलिक, डॉ. मोहन राव, निर्मला बुच, मालिनी घोष, नंदिता भाटला और

लक्ष्मी मूर्ति के प्रति उनकी टिप्पणियों और सुझावों के लिए हम विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं।

हम रंजन डे के प्रति उनकी आलोचनात्मक टिप्पणियों, रचनात्मक सुझावों, दस्तावेज के संपादन और उनके सदैव के सहयोग के लिए बेहद कृतज्ञ हैं।

हम रिपोर्ट बनाने के प्रारंभिक चरण में सहायता करने के लिए ऋचा के प्रति, डाटा एंट्री और गौण महत्व के साहित्य की समीक्षा में सहायता के लिए मोना और दिव्या के प्रति आभार व्यक्त करना चाहते हैं।

हम रिपोर्ट का लेआउट बनाने के लिए शफी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

हम आंकड़ों के विश्लेषण और रिपोर्ट को पूरा करने के लिए समा से जुड़ी प्रीति, शाश्वती, दीपा और मंजीर के और दस्तावेज को पूरा करने में नियमित सहायता और इनपुट के लिए बीनू और अनुज के प्रयासों की सराहना करते हैं।

और आखिर में हम ऋत्विक और पाखी के प्रति इस प्रक्रिया में कई प्रकार से उनके योगदान के लिए आभार प्रकट करते हैं।

यह प्रस्तुत दस्तावेज अंग्रेजी में समा द्वारा प्रकाशित (Beyond Numbers) का हिन्दी रूपातंरण है।

हम इस दस्तावेज़ को स्त्री एवं स्वास्थ्य आंदोलन के प्रति समर्पित करते हैं, जो कि वर्षों से जोर–जबर्दस्ती वाली नीतियों को अमल में आने से रोकने के लिए अनथक संघर्ष करता रहा है। इस आंदोलन ने हम सभी को एक साथ आने और महिलाओं और समाज के दूसरे उपेक्षित तबकों के प्रति अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज उठाने के लिए मंच प्रदान किया है।

प्रस्तावना

1993 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के लागू किये जाने को भारत में स्थानीय नियंत्रण के क्रमिक विकास के क्षेत्र में व्यापक स्तर पर मील के पत्थर के रूप में स्वीकार किया जाता है। स्थानीय नियंत्रण में जनता की लोकतांत्रिक भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए यह अधिनियम – आमतौर पर पंचायती राज अधिनियम कहा जाने वाला – पंचायतों में समाज के उत्पीड़ित तबकों के लिए सीटें आरक्षित करने को अनिवार्य बनाता है। कुल सीटों में से एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें आरक्षित हैं।

लेकिन, कमोबेश एक दशक बाद विभिन्न राज्य सरकारों ने पंचायती राज अधिनियम में कुछ ऐसे संशोधन किये हैं। ये संशोधन पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई'ज) के मूलभूत स्वप्नों और उद्देश्यों की अनदेखी करते हैं। जनसंख्या वृद्धि को लेकर बढ़ती चिंता से प्रेरित होकर किये गये ये संशोधन स्थानीय प्रशासन के हाथ में उन पीआरआई प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराने का अनियंत्रित अधिकार प्रदान करते हैं, जिनके पास एक निर्धारित तारीख के बाद दो से अधिक बच्चे हैं। लोकतांत्रिक तरीके से चुने गये जनप्रतिनिधियों की एक ऐसे आधार पर इस प्रकार की अयोग्यता का स्थानीय नियंत्रण से कोई लेना–देना नहीं है। इस प्रकार से जनप्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराना लोकतंत्र और भागीदारी की भावना की ही अपमान करना है।

इस प्रकार के संशोधन केवल इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि किस प्रकार से 'राष्ट्रीय हित' की हिफाजत के नाम पर राज्य ने व्यक्तियों की बेहद निजी जिंदगी में दखल दिया है और नीतियों के नियमों के जरिये लोगों के निजी चुनाव को बेड़ियों में जकड़ने का काम किया है। जावेद एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था दी, "हमारी नजर में दो से अधिक जीवित बच्चों के होने पर चुनाव लड़ने के अधिकार पर अयोग्यता किसी मूलभूत अधिकार का अतिक्रमण नहीं करती और न ही यह तर्कपरकता की सीमाओं को पार करती है..." इसे राज्य की निरंकुशता के जीवंत उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

भारत के अधिकतर नीति निर्माताओं के लिए कुल जनन क्षमता दर (टीएफआर) को उसके 3–4 के वर्तमान स्तर से लगभग 2 तक नीचे लाने की चुनौती अभी बनी हुई है। लेकिन, उनमें से कोई भी उच्च जनन क्षमता दर के कारणों के सामाजिक संदर्भों के बारे में नहीं सोचना चाहता और न ही वे अपनी नीतियों के असर का एहसास कर पाते हैं। समस्या को जिस प्रकार से देखा जाता है और समाधान सूत्रबद्ध किये जाते हैं उससे यह सीमा ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट होती जाती है। समाज विज्ञानियों, कार्यकर्ताओं, मीडिया और नीति निर्माताओं के बीच चलने वाली लंबी–चौड़ी बहसों और चर्चाओं के बावजूद समाज के अच्छे–खासे हिस्से का और

प्रमुख रूप से राज्य का यह विश्वास अपनी जगह बना हुआ है कि भारत में जनसंख्या 'विस्फोट' की स्थिति है।

अति जनसंख्या के संभावित खतरे और इस प्रकार से संसाधनों के समाप्त होते जाने की बात को मानकर चलते हुए राज्य जोर–जबर्दस्ती वाली जनसंख्या नीतियों को बनाये रखने के निरंतर पक्ष में बना हुआ है। इस प्रकार की सोच के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में बहुत से राज्यों ने दो बच्चों की नीति तैयार की। मध्य प्रदेश उन राज्यों में से है जिसने अपनी स्वयं की राज्य जनसंख्या नीति (एसपीपी) तैयार की है। इसके अलावा, इसने पंचायती राज अधिनियम में एक संशोधन जोड़ा है और चुनाव लड़ने और निर्वाचित पदों पर बने रहने की शर्त के तौर पर 'दो बच्चों की नीति' को रखा है।

विशेषकर महिलाओं और समाज के उपेक्षित तबकों के मानवाधिकार से जुड़े मुद्दों के प्रति समा की प्रतिबद्धता और जोर–जबर्दस्ती वाली जनसंख्या नीतियों को लेकर उपजी उसकी चिंता ने इस प्रकार के मानक के निहितार्थ पर यह अध्ययन शुरू करने की प्रेरणा प्रदान की।

इस अध्ययन ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि संशोधन किस प्रकार से लोगों के अधिकारों और उनकी गरिमा पर हमला है। लोगों की दुर्दशा, घोर अपमान, चिंता, सदमे और राज्य के नियंत्रण के कारण असहायता के उनके बोध को उजागर करने के लिए सचेत प्रयास किये गये हैं। रिपोर्ट के आगे के अध्यायों में जनसंख्या नीतियों, जनसंख्या नियंत्रण में राज्य की भूमिका, पंचायत में दलितों, आदिवासियों और महिला प्रतिनिधियों (पंचों, सरपंचों, उपसरपंचों आदि) के ऊपर इस नीति के असर का विवरण मुहैया कराया जाएगा और दो बच्चों के मानक की वर्तमान स्थिति पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए टिप्पणियां की जाएंगी।

पहला अध्याय भारत में जनसंख्या नीतियों के विकास, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को गढ़ने वाले विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रभाव के बारे में जानकारी प्रदान करता है और विशेष रूप से मध्यप्रदेश राज्य की जनसंख्या नीति पर विचार करता है।

दूसरा अध्याय मध्य प्रदेश के 12 जिलों में की गयी फील्ड स्टडी के संदर्भ, स्टडी डिजाइन और कार्यप्रणाली को स्थापित करता है।

तीसरा अध्याय अध्ययन के निष्कर्षों दो बच्चों की नीति के असर की आलोचनात्मक समझदारी के लिए उसके विश्लेषण को प्रस्तुत करता है।

चौथा अध्याय बहस को जिंदा रखने में मीडिया की भूमिका के बारे में बात करता है। यह अध्याय दो बच्चों के मानक के बरअक्स न्यायपालिका की अवस्थिति पर भी प्रकाश डालता है।

अंतिम और पांचवा अध्याय इस मानक के क्रियान्वयन के काफी बड़े परिणामों पर महत्वपूर्ण

टिप्पणियां दर्ज करता है। यह सिविल सोसायटी के विभिन्न संगठनों, राजनीतिक दलों, एनजीओ'ज आदि द्वारा इस मानक के विरोध में अपनायी जाने वाली रणनीतियों और मध्य प्रदेश में दो बच्चों की नीति को रद्द करने के लिए आंदोलन की वर्तमान स्थिति पर भी विचार करता है।

हम आशा करते हैं कि यह रिपोर्ट पंचायती राज अधिकारियों के ऊपर भेदभावपूर्ण कानूनों और नीतियों के विपरीत असर और समुदाय के सामाजिक रूप से अल्प सुविधा प्राप्त तबकों, जो कि अधिकतर मामलों में आर्थिक रूप से भी गरीब हैं, के पहले से ही वंचित जीवन पर पड़ने वाले दूरगामी खतरों की व्यापक समझदारी मुहैया कराएगी।

अध्याय 1

जनसंख्या नीतियां : कुछ खास बातें

भारत ने 1952 में बिल्कुल शुरू में यानी आजादी के सिर्फ पांच सालों बाद ही सरकार के स्तर पर पहले परिवार नियोजन कार्यक्रम का विकास कर लिया था। उस समय भारत की जनसंख्या लगभग 37 करोड़ और कुल प्रजनन क्षमता दर (टीएफआर) छह के आसपास थी। यह कार्यक्रम जनसंख्या नियंत्रण के पहले के अवधारणा–निर्माण से एक तयशुदा बदलाव का सूचक था जिसे कि 1945 में बंगाल अकाल छानबीन आयोग ने ''नियोजित विकास के अविभाज्य अंग के रूप में'' प्रस्तुत किया था। राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम (एफपीपी) को ''जन्मदर को उस सीमा तक घटाने के उद्देश्य से शुरू किया गया जो कि जनसंख्या को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की जरूरत से मेल खाते स्तर पर रोक कर रखने के लिए आवश्यक थी।''[1] यह दृष्टिकोण 1980 के दशक तक बना रहा और '90 के दशक में इसमें परिवर्तन किया गया ताकि प्रजननीय स्वास्थ्य को लेकर लक्ष्य मुक्त (टार्गेट फ्री) और समुदाय की जरूरत के आकलन के दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया जा सके। इसके बावजूद राज्यों ने 'संख्या को नियंत्रित करने' में विश्वास बनाये रखा और जोर–जबर्दस्ती वाली जनसंख्या नीतियों का निर्माण करते रहे। इसका कारण यह है कि भारत की जनसंख्या नीति के केंद्र में ''लोगों और संख्याओं के बीच, एक–एक व्यक्तियों और लक्षित व्यक्तियों के बीच, स्वास्थ्य–रक्षा सेवा प्रदान करने और परिवार नियोजन को बेचने के बीच पुराना कष्टदायक बंटवारा मौजूद है। परिवार नियोजन को अब परिवार कल्याण का सुनने में ज्यादा अच्छा लगने वाला नाम दिया गया है।''[2]

भाग एक

वैश्विक प्रबंध

भारत विएना (1993) में प्रोग्राम ऑफ एक्शन, काहिरा (1994) में इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन पापुलेशन एंड डेवलपमेंट (आईसीपीडी), बीजिंग (1995) में फोर्थ वर्ल्ड कांफ्रेंस ऑन वूमेन (एफडब्ल्यूसीडब्ल्यू) और यूएन मिलेनियम डिक्लेरेशन (2000) जैसी विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संधियों से बंधा हुआ है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (एनपीपी) 2000 को इन संधियों के आधारभूत नियमों, मुख्य रूप से काहिरा घोषणापत्र (आईसीपीडी) के सिद्धांतों को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

---

1. मूर्ति, लक्ष्मी (2005) 'द पापुलेशन ''प्राब्लम'' एक्सप्लोडिंग मिथ्स' इंडियानेस्ट डाट काम
2. फिलियोज, पामेला (2001) 'हेल्थ हैज नाउ बिकम फैमिली प्लानिंग' इंडियन एक्सप्रेस

काहिरा घोषणापत्र वैश्विक जनसंख्या विमर्श के एक महत्वपूर्ण मुकाम तक पहुंचने का सूचक है। इसकी वजह यह है कि इसने मानव विकास, लैंगिक समानता और न्याय–भावना को केंद्रीय महत्व का बताते हुए 'संख्याओं के खेल' से दूर हटने का प्रयास किया। हालांकि काहिरा घोषणापत्र का प्रोग्राम ऑफ एक्शन (पीओए) जनसंख्या स्थिरीकरण को वैधता प्रदान करता है; लेकिन यह प्रजनन से जुड़े स्वास्थ्य, सूचना सहित मुक्त चयन और लैंगिक समानता के समर्थन पर आधारित दृष्टिकोण की सिफारिश करता है। यह परिवार नियोजन कार्यक्रमों में जोर–जबर्दस्ती को काम में लाने को साफ तौर पर खारिज करता है और जनन–क्षमता घटाने के लिए सामाजिक और आर्थिक प्रोत्साहनों एवं हतोत्साहनों को काम में लाये जाने को हतोत्साहित करता है। काहिरा घोषणापत्र 1994 का नियम 8 घोषणा करता है, ''सभी देशों को स्त्री–पुरुष समानता के आधार पर स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं तक सभी लोगों की पहुंच को सुनिश्चित करने के लिए हर प्रकार के समुचित कदम उठाना चाहिए। इन सेवाओं में प्रजननीय स्वास्थ्य रक्षा से जुड़ी सेवाएं भी आती हैं, जिनमें कि परिवार नियोजन एवं यौन स्वास्थ्य शामिल होता है। ... सभी देशों को किसी भी प्रकार की जोर–जबर्दस्ती के बगैर प्रजननीय स्वास्थ्य रक्षा से जुड़ी तरह–तरह की सेवाएं मुहैया करानी चाहिए। सभी दंपतियों और व्यक्तियों का यह मूलभूत अधिकार है कि वे अपने मन से और जिम्मेदारी के साथ अपने बच्चों की संख्या और उनके बीच के अंतर के बारे में फैसला करें और ऐसा करने के लिए जानकारी, शिक्षा और साधन पाने का भी उन्हें अधिकार है।'' अब यह समझ कायम हुई है कि परिवार के आकार को कम करने का बेहतर तरीका दंड देकर हतोत्साहित करने की बजाय लोगों को शिक्षित करना और उनके रहन–सहन के स्तर में सुधार लाना है। इस समझ ने जनसंख्या नियंत्रण से प्रजननीय स्वास्थ्य के नीतिगत बदलाव को जन्म दिया है।

परिवार नियोजन कार्यक्रम और राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के लिए 1976 में वर्किंग ग्रुप का गठन किया गया, जिससे नीति निर्माताओं के बीच इस बात को लेकर बढ़ती आम सहमति का पता चलता है कि परिवार नियोजन को अगर आबादी के आम कल्याण में सुधार लाने की ओर लक्षित एकीकृत कार्यक्रम का हिस्सा नहीं बनाया गया तो इसको सिर्फ सीमित सफलता ही मिलेगी। परिवार कल्याण नियोजन का लक्ष्य जन्म दर में कमी लाना था और इसके लिए ''परिवार नियोजन सेवाओं को स्वास्थ्य; मां एवं बच्चे के स्वास्थ्य (एमसीएच) और पोषण सेवाओं के साथ ज्यादा से ज्यादा एकीकृत करने की रणनीति अपनायी गयी।''[3] इस नीति ने शैक्षणिक व्यवस्था में 'जनसंख्या से जुड़े मूल्यों' को लागू करने की भी कोशिश की और ''परिवार नियोजन को बढ़ावा देने के प्रयास के क्रम में स्त्री शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने और बच्चों के पोषण को संगठित करने के लिए विशेष उपायों को प्रस्तावित किया गया।''[4]

3. पापुलेशन कंट्रोल टु रिप्रोडक्टिव हेल्थ से राव, मोहन (2004) माल्थुसिअन अरिथमेटिक, सेज, नई दिल्ली, पृ. 46
4. वही

परिवार नियोजन का बढ़ावा देने वाली इन कोशिशों के बावजूद 1991 की जनगणना के नतीजे दर्शाते हैं कि भारत अभी भी विश्व के उन देशों में बना हुआ है जिनकी जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। 1991 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने श्री करुणाकरन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने दूरगामी राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का प्रस्ताव किया, जिसे कि समग्रता में विकास; जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण का दृष्टिकोण अपनाना था। पर, संसद में चर्चा नहीं हो पाने के कारण यह नीति पारित नहीं की जा सकी। इसके बाद, समिति ने यह प्रस्ताव रखा कि डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का मसौदा तैयार किया जाए और संसद सदस्यों को अपने पक्ष में जुटाने के बाद उसने केंद्र एवं राज्यस्तरीय एजेंसियों से अपनी टिप्पणी देने का अनुरोध किया ताकि मसौदा नीति को राष्ट्रीय विकास परिषद का अनुमोदन प्राप्त हो सके और संसद में व्यापक राजनीतिक आम सहमति बनाई जा सके। सबसे पहले, अप्रैल 1996 में टार्गेट फ्री एप्रोच (टीएफए) अपनाई गई; जिसने आधिकारिक तौर पर गर्भनिरोधक की स्वीकृति से जुड़े लक्ष्यों को खत्म दिया। हां, वर्ष 1997 में विभिन्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरने के बाद भी मसौदा नीति संसद के किसी भी सदन के समक्ष प्रस्तुत नहीं की जा सकी।

इस बीच; अक्टूबर 1997 में राष्ट्रीय प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य (आरसीएच) कार्यक्रम शुरू किया गया। इसने एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया, जिसमें कि अनचाहे गर्भों की रोकथाम और प्रबंधन के लिए सवाओं का 'पैकेज'; सुरक्षित मातृत्व और शिशुओं की समुचित देखभाल को प्रोत्साहन; आरक्षित समूहों के लिए पोषण सम्बंधी सेवाएं, आरटीआई'ज की रोकथाम और प्रबंधन के लिए सेवाएं और किशोरों के लिए प्रजननीय स्वास्थ्य सेवाएं शामिल हों। सरकार के मुताबिक आरसीएच की अवधारणा, ''लाभार्थियों को जरूरत आधारित, क्लाइंट को ध्यान में रखने वाली, मांग प्रेरित, उच्च स्तरीय और एकीकृत प्रजननीय स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराने के लिए प्रस्तुत की गई थी।''

लिहाजा; जाहिर है कि सरकार ने नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध से हिमायत; गुणवत्ता का ख्याल और हरेक की पसंद का समर्थन करके अपनी नीति में परिवर्तन लाने का फैसला किया। दरअसल; स्वयं सरकार ने ही जनसंख्या नियंत्रण की लक्ष्योन्मुखी दृष्टिकोण की विफलता को (अपनी आधिकारिक वेबसाइट पर) स्वीकार किया । ''31 मार्च 1996 तक अमल में लाई गई लक्ष्य आधारित प्रणाली परिवार कल्याण कार्यक्रम के तहत लोगों को मुहैया कराई गई सेवाओं की गुणवत्ता की अनदेखी से बुरी तरह प्रभावित हुई। एक–एक क्लाइंट की जरूरतें कायदे से पूरी नहीं हुईं। इस तरह से संख्या से जुड़े पद्धति–विशेष के लक्ष्यों ने इस प्रकार का जनसंख्यात्मक नियोजन मुहैया कराया जो कि देश के लोकतांत्रिक मिजाज के खिलाफ है।''[5]

यही वजह है कि मंत्रिमंडल ने योजना आयोग के उप निदेशक की अध्यक्षता में एक समिति

---

5. मूर्ति, लक्ष्मी (2003) 'नो किडिंग : एपेक्स कोर्ट एनफोर्सेस टू चाइल्ड नार्म' इनफोचेंज न्यूज एंड फीचर्स
6. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000

का गठन किया। इस समिति ने कई चक्रों की बैठकों का आयोजन किया और शिक्षाविदों, जनगणना विशेषज्ञों, समाजशास्त्रियों, जन स्वास्थ्य से जुड़े पेशेवरों और स्त्री संगठनों को अपना सुझाव और योगदान देने के लिए आमंत्रित किया। 1999 में प्राप्त सुझावों को सम्मिलित करके राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का एक नया मसौदा समीक्षा के लिए प्रस्तुत किया गया।[6] फरवरी 2000 में सरकार ने इसके आधार पर एक नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (एनपीपी 2000) की घोषणा की। इस नीति ने प्रजननीय स्वास्थ्य रक्षा प्रावधान में स्व–विवेक से निर्णय लेने और सूचना के साथ सहमति के नियमों की पुष्टि की। इसने परिवार नियोजन और लक्ष्य मुक्त पहुंच को लेकर नागरिकों के जानकारी प्राप्त करके और सोच–समझकर किये जाने वाले फैसले को बढ़ावा देने वाले सरकार के रवैये पर जोर दिया।

एनपीपी 2000 साफ तौर पर बताती है कि आर्थिक एवं सामाजिक विकास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य को केवल लोगों के रहन–सहन के स्तर में सुधार करके, उनकी सुख–समृद्धि को बढ़ाकर और उन्हें रोजगार के अवसर और विकल्प मुहैया कराकर ही प्राप्त किया जा सकता है। यह नीति आगे इस बात की पुष्टि करती है कि देश में प्रजननीय आयु समूह में युवाओं के ऊंचे अनुपात; गर्भनिरोधक उपायों की जरूरत के अधिकतर नहीं पूरी होने के साथ–साथ इस तथ्य की वजह से वृद्धि दर ऊंची बनी रहेगी कि लड़कियों की शादी बहुत जल्दी कर दी जाती है और उन्हें बार–बार गर्भधारण करने की परेशानी उठानी पड़ती है। इस पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जनसंख्या नीति ने 2010 तक जनसंख्या में कमी लाने के लिए एक कार्ययोजना प्रस्तावित की। यह नीति शिशु जन्म के समय जीवन प्रत्याशा; मां के स्वास्थ्य और गर्भनिरोधक उपायों की पूरी नहीं हुई जरूरत को उचित महत्व देते हुए विस्तृत पैकेज पर आधारित है। हालांकि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति छोटे परिवार की नीति को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित करने वाले उपायों की एक कड़ी के बारे में बताती है लेकिन देश के नागरिकों को हासिल नागरिक और राजनीतिक आजादियों के संरक्षण को लेकर उसकी समझ साफ है।[7] हां, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के ''छोटे परिवार की नीति'' को अक्सर ही ''दो बच्चों की नीति'' बता दिया जाता है। पर, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में अपनाई गई बहुत सी नई रणनीतियों को अमल में आने का कभी मौका ही नहीं मिला था। सरकार द्वारा काहिरा में की गई घोषणाओं पर नजर रखने वाले संगठनों को मिलाकर बने 'हेल्थ वॉच' ने नौ राज्यों में सर्वेक्षण करा कर देखा कि नए दृष्टिोण को आधे–अधूरे ढंग से अमल में लाया गया है।[8] उन क्षेत्रों में; जहां पर टार्गेट फ्री एप्रोच (टीएफए) को अमल में लाने के प्रयास किए गए; बहुत से अधिकारियों ने उसके लाभों पर संदेह जाहिर किया और नसबंदी की दरों में इसके बाद आने वाली गिरावट की व्याख्या बहुत जल्दी ही व्यवस्था की विफलता के रूप में की।[9]

---

7. राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग, भारत सरकार
8. शर्मा, कल्पना (2000) 'फार्गेट टार्गेट्स, रिमेम्बर पीपुल' दि हिंदू
9. भाटिया, रजनी (2005) 'टेन ईयर्स आटर कैरो : दि रिसर्जेंस आफ कोअर्सिव पापुलेशन कंट्रोल इन इंडिया,' डिफरेंट टेक्स

भारत की जनसंख्या 11 मई 2000 को एक अरब के निशान को पार कर गई। इस अवसर ने जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करने के क्रम में विकास से जुड़ी नीति की जरूरत पर सार्वजनिक चर्चा को आगे और बढ़ाने का काम किया। फिर भी, इसने ऐसे कुछ क्षेत्रों के भीतर चिंता पैदा कर दी जो कि किसी भी कीमत पर जनसंख्या में कमी लाने की जरूरत को महसूस करते थे। उदाहरण के लिए, छत्तीसगढ़ राज्य के सरकारी अधिकारी एम.के. रावत ने इस आम धारणा को व्यक्त किया, ''हम हमेशा के लिए इंतजार नहीं कर सकते। काहिरा घोषणापत्र द्वारा समर्थित सशक्तिकरण का रास्ता एक लंबी प्रक्रिया है और तब तक तो हमारी जनसंख्या और एक अरब बढ़ जाएगी ... हां, यह जोर–जबर्दस्ती है। लेकिन जनसंख्या के एक अरब से ज्यादा हो जाने के साथ परिवार का आकार अब व्यक्तिगत मामला नहीं रह गया है।''[10] यह बात परिवार कल्याण से जुड़े आठ 'प्राइवेट मेम्बर' के उन विधेयकों[11] में एकदम खुलकर जाहिर होती है; जिन्हें कि 1999–2000 के दौरान संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इन विधेयकों का मुख्य सरोकार जनसंख्या को 'नियंत्रित' करना था और गरीबी उन्मूलन के लिए समन्वित प्रयास उनकी नजरों से ओझल था।

इसके बाद, 2002 में परिवार कल्याण कार्यक्रम (एफडब्ल्यूपी) की समीक्षा करने के लिए एक गुमनाम 'रणनीति पत्र' का पता चला, जिसकी जिम्मेदारी राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग या स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने नहीं ली। 'अनाधिकारिक आधिकारिक' दस्तावेज जनसंख्या की वर्तमान स्थिति के ''वास्तविक'' परीक्षण की मांग करता है और यह बताता है कि बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश समस्याग्रस्त राज्य हैं। रणनीति पत्र ''प्रभावी हस्तक्षेप'' का आग्रह करता है ताकि कम से कम समय में जनन क्षमता के स्तर को नीचे लाया जा सके। ''जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि'' को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं की खराब गुणवत्ता के कारण के रूप में दिखाया गया है। दरअसल, यह काहिरा घोषणापत्र के बाद भारत द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण को अस्वीकार करता है। रणनीति पत्र कहता है, ''बहुत संभव है कि जनसमर्थन के सिद्धांत, देखभाल की गुणवत्ता और व्यक्तिगत पसंद का अधिकार विकसित देशों के लिए प्रासंगिक हो, जहां पर जनसंख्या समस्या है ही नहीं और स्वास्थ्य रक्षा का बुनियादी ढांचा कायदे से काम कर रहा है।''[12]

---

10. लक्ष्मी, रामा (2004) 'ए च्वाइस बिटवीन पालिटिक्स, प्रोजेनी इन इंडिया' दि वाशिंगटन पोस्ट
11. चंद्रकार खैरे द्वारा पेश किया गया कुंवारों के लिए भत्ता विधेयक 2000, लीविंग नो स्टोन अनटर्न्ड; यूवी कृश्णन राजू द्वारा पेश किया गया जनसंख्या नियंत्रण विधेयक, 2000; उत्तमराव ढिकाले द्वारा प्रस्तावित जनसंख्या नीति विधेयक 2000; और दूसरे सभी लोगों ने तरह–तरह के प्रोत्साहनों और हतोत्साहनों के जरिये जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए बहुविध तंत्रों को काम में लाने का प्रस्ताव रखा।
12. वर्ष 2002 में महिला संगठनों द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सौंपा गया ज्ञापन।

राज्यों की जनसंख्या नीति

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के विरोध में जाकर अलग–अलग राज्यों की जनसंख्या नीतियों ने परेशानी पैदा करने वाले नये प्रोत्साहनों एवं हतोत्साहनों की व्यवस्था शुरू की। यह व्यवस्था आम जनता विशेषकर गरीबों, दलितों, आदिवासियों और महिलाओं जैसे समाज में हाशिये पर रहने वाले लोगों के अधिकारों को पैरों तले रौंदने का काम करती है। राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश,[13] उड़ीसा, छत्तीसगढ़, गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश नामक दस राज्यों ने अपनी खुद की जनसंख्या नीतियां तैयार की हैं, जो कि दो बच्चों के मां–बाप को तीसरा बच्चा पैदा करने से रोकने का काम करती हैं।

हतोत्साहनों में निम्नलिखित बातें शामिल हैं : तीसरे बच्चे के लिए राशन कार्ड और सरकारी स्कूलों में शिक्षा से इन्कार, दो से अधिक बच्चों के मां–बाप के लिए तरह–तरह के कल्याण कार्यक्रमों को वापस लेना और उन्हें सरकारी नौकरियों के साथ–साथ स्थानीय निकायों का चुनाव लड़ने से वंचित करना। प्रोत्साहनों की व्यवस्था के तहत दो बच्चों के बाद नसबंदी को अपनाने वाले लोगों को गरीबी उन्मूलन और रोजगार योजनाओं का लाभ सबसे पहले प्रदान किया जाता है।[14]

राज्यों ने नसबंदी करवाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने हेतु अनेक प्रकार के नए–नये प्रलोभन भी दिये हैं, उदाहरण के लिए सस्ते आवास, खाद्य एवं सरकारी नौकरियों में वरीयता दिये जाने की पेशकश। इसके अलावा, कुछ राज्यों ने ऐसी सामूहिक या सामुदायिक प्रोत्साहन योजनाओं को क्रियान्वित किया है, जिसके तहत लोगों को आवास, साफ–सफाई, विद्यालय भवन आदि के लिए सबसे पहले विकास अनुदान प्रदान किया जाता है। यह अनुदान पंचायती राज संस्थाओं, सरकारी कर्मचारियों और स्वास्थ्य प्रदाताओं को परिवार नियोजन के क्षेत्र में योग्यता के सामूहिक प्रदर्शन के आधार पर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश में 'हेल्थ वाच' ने इस बात को दर्ज किया कि दो बच्चे हो चुकने के बाद स्त्रियों को नसबंदी के लिए 'तैयार' करने हेतु प्रोत्साहन के रूप में सोने की चेनें प्रदान की जाती थीं।[15] उत्तर प्रदेश के तीन जिलों में शुरू की गई नसबंदी के लिए बंदूक योजना तो सर्वाधिक स्तब्ध करने वाली है। यह योजना परिवार नियोजन के लिए ''प्रेरित करने वालों'' को प्रोत्साहन देने का वादा करती है। यह योजना जमीन के मालिक धनी किसानों की शोषणकारी ताकत को काम में लाने का प्रयास करती है। इस योजना ने लखीमपुर खीरी जिले के एक किसान को पांच श्रमिकों को अपहृत करके बेहोश करने और फिर उनकी नसबंदी करवाने के लिए ''प्रोत्साहित'' किया। इस किसान को इसके

---

13. 5 अप्रैल 2005 को हिमाचल प्रदेश के बजट सत्र में दो बच्चों की नीति को हटाये जाने के लिए विधेयक प्रस्तुत और पारित किया गया। मुख्यमंत्री ने 13 मई 2005 को इस पर हस्ताक्षर किये।
14. हेल्थ वाच (2002) 'स्टेट पापुलेशन पालिसीज' सेमिनार, 511, मार्च
15. शर्मा, कल्पना (2000) दि हिंदू

Look how UP shoots desperately for its sterilisation target

AMAN SHARMA

LUCKNOW, AUGUST 22

The Indian Express 23/8/04

WHAT'S the link between getting sterilised and owning a gun? Uttar Pradesh doesn't treat that as a joke. With a high enough population and considering the demand, not enough gun licences, some district magistrates in the state are now offering the same to anyone in their region who opts for sterilisation. The incentive rises if you convince more people to go in for the procedure.

However, the scheme is already threatening to run into controversy, something that India's family planning programme can definitely do without.

An FIR was registered less than a month ago after a farmer allegedly got five of his labourers—including a bachelor—forcibly sterilised in Lakhimpur Kheri district when offered a revolver licence in exchange. But now the District Magistrate of Bareilly is following in the footsteps of his Lakhimpur Kheri counterpart.

"Any person who opts for sterilisation will be given topmost priority for granting a gun licence.

CONTINUED ON PAGE 2

बदले में रिवाल्वर का लाइसेंस दिया जाना था। हालांकि यह योजना पूरी तरह से खतरे से भरी है लेकिन बरेली (पड़ोसी जिला) के जिला मजिस्ट्रेट भी इस नियम को लागू करने को तत्पर हैं–"अगर आप एक नली बंदूक के लिए लाइसेंस चाहते हैं तो आपको अपनी और एक दूसरे आदमी की नसबंदी करवानी होगी। दोनली बंदूक के लिए आवेदक को नसबंदी करवाने के लिए दो लोगों को लाना होगा। राइफल के लिए आवेदक को तीन व्यक्तियों को लाना चाहिए और रिवाल्वर के लिए लाइसेंस तब मिलेगा जब आवेदक के अलावा अन्य चार लोग नसबंदी करवायें।"[16] इसके अतिरिक्त चाहे भले ही कार्यक्रम को लक्ष्य मुक्त बताया जाता हो पर उत्तर प्रदेश ने 2005 तक प्रतिवर्ष नसबंदी के दस लाख केसों और दो बच्चों के जन्म के बीच अंतराल लाने वाले उपायों को काम में लाने वाले 30 लाख लोगों की संख्या तक पहुंचने के लिए पद्धति विशेष के गर्भनिरोधक लक्ष्यों को फिर से अपनाया था।[17] कुछ राज्यों ने विवाह के समय उम्र, बेटे की चाहत और गर्भनिरोधक उपायों को अपनाने में पुरुष जिम्मेदारी के अभाव जैसे सामाजिक मुद्दों को जनसंख्या नीतियों के जरिये संबोधित करने का भी प्रयास किया। फिर भी, ये चिंताएं प्रोत्साहनों एवं हतोत्साहनों की जोर–जबर्दस्ती वाली भाषा में खो गयीं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्यप्रदेश 18 वर्ष की कानूनी उम्र से पहले विवाह करने वाले लोगों को सरकारी नौकरियों से वंचित करते हैं। इसी प्रकार, आंध्र प्रदेश जनसंख्या नीति लाटरी पद्धति के जरिये चुने गये तीन ऐसे दंपतियों को पुरस्कृत करती है, जिन्होंने एक बच्चे या दो लड़कियों के बाद परिवार नियोजन का स्थायी तरीका अपनाया हो।

इसके अलावा, बहुत से राज्यों ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति से अलग हटकर दो से अधिक बच्चों वाले लोगों को पंचायत चुनावों में भाग लेने की अनुमति नहीं देने और पंचायती राज संस्थाओं के उन निर्वाचित सदस्यों को अयोग्य ठहराने के लिये कानून बनाया है, जिनके यहां निर्धारित तारीख के बाद बच्चा पैदा हुआ था। कुछ राज्यों ने शहरी स्थानीय निकायों, कृषि उपज बाजार समितियों और सहकारी समितियों को कवर करने के लिए इस व्यवस्था को पंचायती राज चुनावों से आगे विस्तार दिया है। इसके अलावा, इस विस्तार का उद्देश्य ऋणों, सब्सिडियों, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों और सरकारी नौकरियों के लिए अर्हता जैसे विभिन्न राज्य–प्रायोजित कार्यक्रम के लाभों से ऐसे लोगों को बाहर रखना था। दो से अधिक बच्चे वालों को चुनाव

---

16. शर्मा, अमन (2004) इंडियन एक्सप्रेस

17. उत्तरप्रदेश जनसंख्या नीति से अनुच्छेद 2. 4. 4.

लड़ने के अयोग्य ठहराने के लिए संविधान में 79वां संशोधन करने का प्रस्ताव साफ तौर पर इस बात को जाहिर करता है कि सरकार हतोत्साहनों में विश्वास करती है।

इसके अलावा दूसरे बहुत से विधेयकों में जोर–जबर्दस्ती करने वाले उपायों को काम में लाकर जनसंख्या नियंत्रण की सोच जाहिर होती है। राज्य विधानमंडल के ऊपरी सदन, महाराष्ट्र राज्य विधान परिषद ने 7 अप्रैल 2005 को महाराष्ट्र जल संसाधन नियामक विधेयक को मंजूरी प्रदान की। यह विधेयक प्रदेश के उन किसानों के ऊपर दो बच्चों के परिवार की नीति को थोपता है, जो कि सिंचाई सुविधाओं का लाभ लेना चाहते हैं। ऊपरी सदन द्वारा पारित इस विधेयक के कानून बन जाने पर दो से अधिक बच्चों वाले किसानों को सिंचाई के लिए पानी प्राप्त करने से मना कर दिया जाएगा और उन्हें इस समय प्राप्त सिंचाई लाभों में भी कटौती की जाएगी। नियम का अनुपालन करने में विफल रहने पर कैद और जुर्माना हो सकता है। फिर, जब 13 अप्रैल को विधेयक निचले सदन में पहुंचा तो खूब होहल्ला मचा और सरकार इस धारा को बदलने के लिए बाध्य हुई। पानी से वंचित करने की बजाय सरकार अब बड़े परिवार वाले किसानों से पानी की प्रचलित दरों के मुकाबले डेढ़ गुना तक वसूल करेगी।[18]

दो बच्चों की नीति का भूत देश को बार–बार भयभीत करने के लिए वापस आ जाता है। जनसंख्या के जोर–जबर्दस्ती वाले इस विमर्श में दक्षिणपंथी हिंदुओं द्वारा प्रचारित इस बकवास ने एक और बात यह जोड़ी है कि मुस्लिमों की जनसंख्या इतनी अधिक तेजी से बढ़ रही है कि देश में उनके हिंदुओं से अधिक हो जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। उत्तर प्रदेश में वर्ष 2000 में राज्य की नई जनसंख्या नीति की घोषणा करते हुए हिंदू राष्ट्रवादी मुख्यमंत्री आर.पी. गुप्ता ने अशोभन ढंग से कहा, "ऐसे समूह और समुदाय हैं जिन्हें लगता है कि अगर वे अपनी संख्या बढ़ाते रहे तो एक दिन वे सत्ता पर काबिज हो जाएंगे। इस प्रकार की सोच को हतोत्साहित करना होगा।"[19] दो बच्चों की नीति को थोपने का गुजरात का फैसला भी इसी प्रकार की राजनीतिक सोच का परिणाम जान पड़ता है। गुजरात ने 2001 की जनगणना के बाद अचानक यह घोषणा की कि राज्य के किसी भी दंपति के पास, फिर उसकी जाति या धर्म चाहे जो हो, दो बच्चों से अधिक नहीं होने चाहिए।[20]

महिला संगठनों एवं स्वास्थ्य जनसंख्या नियंत्रण के जोर–जबर्दस्ती का सहारा लेने वाले उपायों को फिर से अपनाये जाने के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की है। 6 मार्च 2003 को महिला प्रतिनिधियों के एक समूह ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) में याचिका दायर

---

18. बावडैम (2005) फ्रंटलाइन
19. त्रिपाठी, पूर्णिमा एस (2000) 'न्यू यूपी पापुलेशन पालिसी टार्गेट्स माइनारिटीज' दि एशियन एज, खंड 3, अंक 5 मार्च 6, पृ. 1
20. खन्ना, रेणू (2001) 'वीमेन्स पर्सपेक्टिव आन पापुलेशन पालिसील : पापुलेशन पालिसी स्टेटमेंट फार गुजरात' मेडिको फ्रेंड सर्कल बुलेटिन, 288–89 (जुलाई–अक्तूबर)

की। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 1998–99 का हवाला देते हुए याचिका कहती है : ''इस तरह से तो दो बच्चों की नीति को थोपने और प्रस्तावित हतोत्साहनों का मतलब यह होगा कि पहले से ही दबे–कुचले लोगों की अच्छी–खासी संख्या को सरकार से थोड़ी–बहुत मिलने वाली सुविधाओं से वंचित होने पर होने वाली परेशानी को झेलना पड़ेगा।'' यह सर्वेक्षण दर्शाता है कि अनुसूचित जातियों (अजा) के लिए कुल प्रजनन क्षमता दर 3.15, अनुसूचित जनजातियों (अ.ज.जा.) के लिए 3.06 और समग्रता में निरक्षर स्त्रियों के मध्य 3.47 है। इसके जवाब में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के सदस्य सचिव को नोटिस जारी करके ''तथाकथित रणनीति पत्र को प्रमाणित करने और यह स्पष्ट करने के लिए कहा था कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के उलट पड़ने वाले मानवाधिकार विरोधी कदमों के बारे में कैसे सोचा गया।''

महिला संगठनों ने दो बच्चों की नीति को स्त्री–विरोधी और गरीब विरोधी[21] दोनों बताते हुए उसकी निंदा की और इस फैसले की भर्त्सना करते हुए और यह मांग करते हुए बयान जारी किया कि संसद काहिरा घोषणापत्र और राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के नियमों का पालने करने के लिए राज्यों को बाध्य करने हेतु कार्रवाई करे।

उसने इस तथ्य पर जोर भी दिया है कि 'जनसंख्या नियंत्रण' की नीतियों को उन स्त्रियों की ओर लक्षित किया गया है, जिनके पास जटिल सामाजिक–आर्थिक कारणों के चलते बच्चे अधिक संख्या में हैं। इन कारणों में फौरी तौर पर जीवित रहने और आवश्यकता से लेकर शिशुओं की ऊंची मृत्यु दर, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की कमी और प्रजनन के ऊपर पितृसत्तात्मक नियंत्रण[22] तक शामिल हैं। राज्य की सहायता से चलने वाले सामाजिक कल्याण के नहीं होने से बीमारी और बुढ़ापे में सहारा एकमात्र बच्चे ही होते हैं। बच्चों को इस रूप में नहीं देखा जाता है कि उनके होने से परिवार का खर्च बढ़ेगा। इसके बजाय उन्हें कामकाज में हाथ बंटाने वाले के रूप में देखा जाता है। उसने इस आधार पर भी इस नीति की निंदा की कि यह स्त्रियों और दबे–कुचले लोगों को सामर्थ्य प्रदान करने वाले पंचायती राज अधिनियम के 73वें और 74वें संशोधन से पीछे की ओर कदम उठाता है।

---

21. मुकुल, अक्षय (2003) ' टू चाइल्ड नार्म क्रिपल्स वीमेन' दि टाइम्स आफ इंडिया, 7 मार्च
22. दि हिंदू, 2 अगस्त (2003) 'एससी रूलिंग आन टू चाइल्ड नार्म क्रिटिसाइज्ड'

पंचायती राज संस्थाएं (पी.आर.आई.एस.)

1993 में 73वें ओर 74वें संशोधनों ने ग्रामीण एवं शहरी स्थानीय निकायों को वह संवैधानिक दर्जा प्रदान किया, जो कि उन्हें पहले हासिल नहीं था और स्थानीय तौर पर निर्वाचित निकायों के लिए नियमित चुनावों को अनिवार्य बना कर इस दर्जे को मजबूती प्रदान की। इसके अलावा, इन संशोधनों ने इन स्थानीय निकायों में महिलाओं एवं पारंपरिक रूप से अभावग्रस्त (और संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त) समूहों : दलितों (अनुसूचित जातियों) और आदिवासियों (भारतीय उपमहाद्वीप की देशज आबादियों अर्थात अनुसूचित जनजातियों) के लोगों के लिए पदों के आरक्षण को अनिवार्य बनाया।

प्रमुख प्रावधानों में से कुछ इस प्रकार हैं :

- प्रत्येक राज्य में (उन राज्यों को छोड़कर जिनकी आबादी 20 लाख से कम है) ग्रामीण स्थानीय निकायों (पंचायतों) की गांव, मध्यवर्ती एवं जिला स्तर पर स्थापना (अनुच्छेद 243 बी)
- सभी पंचायतों में सभी स्तरों पर दलितों एवं आदिवासियों के लिए पंचायत की आबादी में उनके हिस्से के अनुपात में सीटों का अनिवार्य आरक्षण (अनुच्छेद 243 डी)
- दलितों एवं आदिवासियों के लिए आरक्षित सीटों के लिए आवेदन करने वाली स्त्रियों के लिए आरक्षण के साथ–साथ स्त्रियों के लिए सभी पंचायतों में सभी स्तरों पर कुल सीटों के एक तिहाई का अनिवार्य आरक्षण (अनुच्छेद 243 डी)
- राज्य की जनसंख्या में उनके हिस्से के अनुपात में दलितों एवं आदिवासियों के लिए हर स्तर पर पंचायत अध्यक्ष के पद का अनिवार्य आरक्षण(अनुच्छेद 243 डी)
- महिलाओं के लिए समस्त तीनों स्तरों पर पंचायत अध्यक्ष के एक तिहाई पदों का अनिवार्य आरक्षण (अनुच्छेद 243 डी)

इन आलोचनाओं के जवाब में केंद्र सरकार ने 23 मई 2005 को आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, छत्तीसगढ़, हरियाणा और मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्रियों से अपने राज्यों में पंचायत सदस्यों के लिए दो बच्चों की नीति को वापस लेने पर विचार करने का अनुरोध किया। केंद्रीय पंचायती राज मंत्री मणिशंकर अय्यर ने इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों को भेजे अपने पत्र में लिखा, "चुनाव के लिए पूर्व अर्हता के रूप में इस नीति को लागू करना राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 से मेल नहीं खाता और स्त्रियों के सशक्तिकरण, युवाओं, दलितों और कमजोर तबकों पर विपरीत असर डालता है और वह भी जनसंख्या को स्थिर करने के घोषित उद्देश्य की सेवा किए बगैर।"

पंचायतीराज मंत्रालय में हम लोगों का मानना है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों या उनकी पत्नियों के रूप में महिलाओं के ऊपर विशेष रूप से इसका विपरीत असर पड़ता है क्योंकि उन्हें अपने

फैसले खुद करने का अधिकार नहीं होता।" उन्होंने आगे जोड़ा कि समाज में बेटे को बहुत अधिक वरीयता देने के चलन के कारण पंचायत प्रतिनिधियों के ऊपर दो बच्चों की नीति का कोई भी दबाव बालिका शिशु के गर्भपात को बढ़ाएगा, लड़कियों के खिलाफ भेदभाव में वृद्धि को प्रोत्साहित करेगा और पहले से ही घटते लिंग–अनुपात को बदतर बनाएगा। उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि हिमाचल प्रदेश ने इस "प्रतिगामी धारा" को अपने पंचायती राज अधिनियम में वापस ले लिया है। उन्होंने इस तथ्य के मद्देनजर राज्य सरकारों से ऐसा करने पर विचार करने का अनुरोध किया।[23]

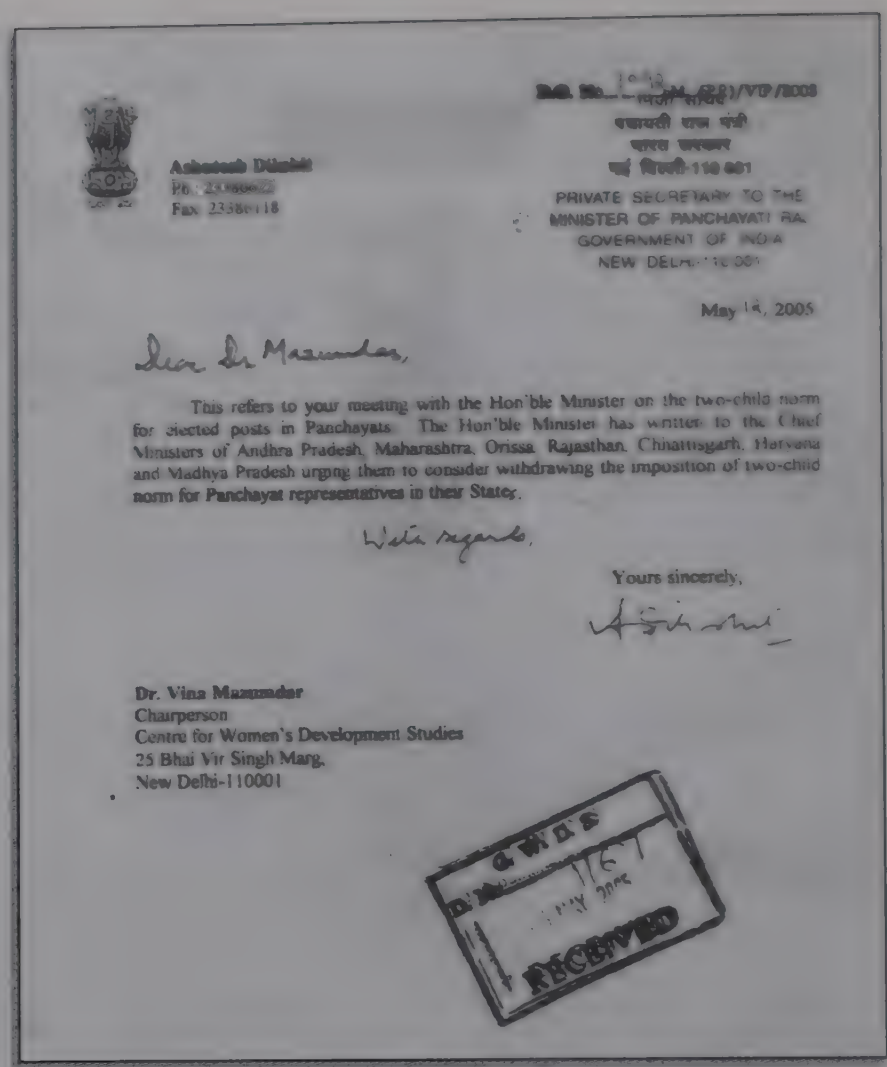

Ashutosh Dikshit
Ph.: 23[illegible]
Fax 23386118

पंचायती राज मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली-110 001

PRIVATE SECRETARY TO THE
MINISTER OF PANCHAYATI RAJ
GOVERNMENT OF INDIA
NEW DELHI-110 001

May 14, 2005

Dear Dr Mazumdar,

This refers to your meeting with the Hon'ble Minister on the two-child norm for elected posts in Panchayats. The Hon'ble Minister has written to the Chief Ministers of Andhra Pradesh, Maharashtra, Orissa, Rajasthan, Chhattisgarh, Haryana and Madhya Pradesh urging them to consider withdrawing the imposition of two-child norm for Panchayat representatives in their States.

With regards,

Yours sincerely,

Dr. Vina Mazumdar
Chairperson
Centre for Women's Development Studies
25 Bhai Vir Singh Marg,
New Delhi-110001

CWDS
RECEIVED

भाग– दो

मध्य प्रदेश : संक्षिप्त परिचय और जनसंख्या नीति

मध्यप्रदेश राज्य में क्षेत्रीय स्तर पर अच्छी–खासी विविधता देखने को मिलती है और कुछ जिलों में आदिवासियों की आबादी बहुत अधिक है। मध्यप्रदेश का भौगोलिक क्षेत्रफल 308256 वर्ग किलोमीटर है जो कि देश के कुल क्षेत्रफल का 9.7 प्रतिशत है। इस राज्य में 45 जिले हैं और यहां पर कुल आबादी का 5.88 प्रतिशत हिस्सा निवास करता है। यह राज्य भीषण गरीबी से त्रस्त है और यहां पर साक्षरता विशेषकर स्त्री साक्षरतर की दर बहुत कम है। राज्य के निवासियों का स्वास्थ्य का स्तर और विकास के दूसरे सूचकांक बहुत नीचे हैं।[24] मध्यप्रदेश में कुल साक्षरता दर 64.1 प्रतिशत, पुरुष साक्षरता दर 71.8 और स्त्री साक्षरता दर केवल 50.3 प्रतिशत है जबकि राष्ट्रीय औसत 65.38 प्रतिशत का है। इसमें पुरुषों और स्त्रियों का प्रतिशत क्रमशः 75.85 और 54.16 है।

---

23. उन संगठनों को पंचायती राज मंत्रालय का पत्र जिन्होंने मंत्रालय के पास पंचायत सदस्यों से दो बच्चों के मानक के अधिरोपण को वापस लेने के लिए संयुक्त याचिका दायर की थी। (स्रोत : www.indiadaily.com / ब्रेकिंग न्यूज / 36531. एएसपी)

24. जिला सांख्यिकीय हैंडबुक्स और भारत की जनगणना 2001

ग्रामीण क्षेत्रों में 1994 से 2000 के बीच रोजगार वृद्धि दर 3.71 प्रतिशत प्रति वर्ष से घटकर 0.69 प्रतिशत हो गयी। मजदूरों को काम मिलने की दर में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के आंकड़े दर्शाते हैं कि 1993–94 से 1999–2000 के बीच दिहाड़ी मजदूरों में बहुत थोड़ी सी वृद्धि हुई है। 1993–1994 में 31.7 प्रतिशत पुरुष और 37.6 प्रतिशत महिलायें दिहाड़ी मजदूरी पर लगी थीं और 1999–2000 में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः 37.1 प्रतिशत और 44.1 प्रतिशत हो गयी।

आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी के लिहाज से भी स्थिति निराशाजनक है। 26.19 प्रतिशत महिलायें मुख्य धारा की मजदूर हैं, 37.29 प्रतिशत किसान हैं और 52.77 प्रतिशत खेत मजदूर हैं; तकरीबन 50.36 प्रतिशत कुटीर उद्योगों में लगी हैं और 16.29 प्रतिशत अन्य कामों में लगी हुई हैं (प्रत्येक श्रेणी हरेक क्षेत्र में महिलाओं के हिस्से को दर्शाता है)। इससे राज्य में महिलाओं की स्थिति के खराब होने का पता चलता है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी राज्य का प्रदर्शन निराशाजनक है। एक हजार के पीछे की 88 शिशु मृत्यु दर 68 के राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक है। एनएफएचएस के अनुसार बाल मृत्यु दर एक हजार के पीछे 56.4 है जो कि राष्ट्रीय औसत की लगभग दुगुनी है। मध्यप्रदेश में मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से 20 प्रतिशत अधिक है। आंकड़े बताते हैं कि मध्यप्रदेश में समस्त भारतीय राज्यों में खाद्य पर प्रति व्यक्ति खर्च सबसे कम है।

समग्रता में लिंग अनुपात प्रति हजार पुरुषों पर 920 महिलाओं का है। चम्बल के मुरैना जिले में प्रति हजार पुरुषों के पीछे 822 महिलायें, भिंड में 829, ग्वालियर में 847 और शिवपुरी में प्रति हजार पुरुषों के पीछे महिलाओं की संख्या 858 है। औसत लिंग अनुपात का घटना चिंताजनक है। 1991 के आंकड़ों की तुलना में 2001 में पूर्वी निमार, छिंदवाड़ा, नरसिम्हापुर और दामोह जिलों में स्त्री अनुपात निरंतर कम होता गया है। 2001 में 0–6 का लिंग अनुपात 929 है, जबकि 1991 की जनगणना में यह 941 था। 2001 में 0–6 लिंग अनुपात भिंड में 829, मुरैना में 829, ग्वालियर में 849 और शिवपुरी में 909 है।

यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें मध्यप्रदेश राज्य ने वर्ष 2000 में अपनी जनसंख्या नीति तैयार की। इसका उद्देश्य यह था कि ऊपर से दिशा–निर्देश लेने की बजाय जमीनी स्तर पर तौर–तरीके सुझाये जायें ताकि नीतियों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जा सके।

जैसा कि मध्यप्रदेश जनसंख्या नीति के दस्तावेज में बताया गया है तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह का सपना "माहौल का प्रेरक बनाना, महिलाओं का सशक्तिकरण करना और कार्यक्रम प्रबंधन में सुधार करना था।"

इसके पीछे जो मुख्य उद्देश्य है वह यह है कि जनसंख्या, संसाधनों और पर्यावरण के बीच संतुलन कायम किया जाये। इसके लिए जनन क्षमता, शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर में

उल्लेखनीय कमी लाकर वर्ष 2011 तक कुल जनन क्षमता दर को 2.1 पर पहुंचा देना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज्य की जनसंख्या नीति पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों, जिला नियोजन समिति, निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य संस्थाओं, कार्पोरेट क्षेत्र, एनजीओ'ज, सहकारी संगठनों जैसे विभिन्न हितग्राहियों और क्रियान्वयन प्रक्रिया के लिए अन्य एजेंसियों को जोड़ने का प्रयास करती है।

सामुदायिक भागीदारी और कार्यक्रम के स्वामित्व के नाम पर राज्य ने योजनाओं की एक श्रृंखला की शुरुआत की। इनमें से नीचे दी गयी कुछ योजनायें समुदाय के लिए दूरगामी महत्व रखती थीं।

- 26 जनवरी 2001 से विवाह की कानूनी उम्र से पहले विवाह करने वाले लोग मध्यप्रदेश में सरकारी रोजगार के लिए प्रयास करने के हकदार न होंगे।
- ऐसे लोग जिनके पास दो से अधिक बच्चे हैं वे 26 जनवरी 2001 के बाद से पंचायतों, स्थानीय निकायों, मंडियों या राज्य के सहकारी संगठनों के लिए चुनाव लड़ने योग्य न रह जायेंगे। उस स्थिति में जबकि वे चुन लिये जाते हैं और इस बीच उनके यहां तीसरी बच्चा हो जाता है, उन्हें पदभार ग्रहण करने के अयोग्य ठहरा दिया जाएगा।
- लड़कियों की स्कूली पढ़ाई को सुनिश्चित करने और बाल विवाह को रोकने के लिए राजलक्ष्मी जैसी बालिका शिशु योजना वित्तीय संस्थाओं की मदद से राज्य में शुरू की जाएगी।
- हर साल सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाली स्वास्थ्य संस्थाओं, व्यक्तियों और पंचायती राज संस्थाओं को सभी स्तरों पर जनसंख्या को स्थिर बनाने के लिए सामुदायिक सहायता के क्षेत्र में पुरस्कार प्रदान किये जाएंगे।
- ग्रामीण विकास योजनाओं, विशेषकर बुनियादी ढांचे से सम्बद्ध योजनाओं को परिवार नियोजन और प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य प्रदर्शन से जोड़ा जाएगा।

पंचायती राज्य प्रतिनिधियों के लिए दो बच्चों की नीति को अनुच्छेद 36, डी (1) (5) के तहत पंचायती राज अधिनियम में संशोधन लाकर आगे और ठोस रूप प्रदान किया जाएगा। संशोधन के जरिये यह व्यवस्था की गयी है कि 26 जनवरी 2001 के बाद ऐसे व्यक्तियों को, जिनके पास तीसरा बच्चा होगा, उनके पदों पर से हटा दिया जाएगा और वे चुनावों में भाग लेने योग्य नहीं रह जाएंगे।[25]

---

25. द्विबेदी, आर (2003) मध्य प्रदेश पंचायत राज और ग्राम स्वराज अधिनियम (हिंदी में) सुबिधा लॉ हाउस, भोपाल

सरकारी नौकरियों और पदों को प्राप्त करने और पंचायती राज संस्थाओं में भाग लेने से रोक दिये जाने पर पहले से ही अधिकारविहीन लोगों की स्थिति और भी ज्यादा खराब हो गयी है। यह तो है कि ऐसे अभागे लोगों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत जीवन और समानता के अनुच्छेद 21 पर आधारित अधिकार तो मिले हुए हैं, लेकिन इन अधिकारों की उनके जीवन में बहुत अधिक प्रासंगिकता नहीं है।[26] अतएव बल प्रयोग के ढ़ांचे के भीतर सामाजिक मुद्दों से जुड़ी अवधारणा का निर्माण और विकास के मौजूदा नमूने की आलोचनात्मक विवेक के साथ पड़ताल जरूरी है।

---

26. बख्शी, उपेंद्र (2005) 'सेंस एंड सेंसिबिलिटी'

अध्याय 2

संदर्भ, अध्ययन की रूपरेखा और पद्धतिशास्त्र

महिलाओं के स्वास्थ्य पर समा का काम महिलाओं के स्वायत्त आंदोलन के संदर्भ में विकसित हुआ है। यह आंदोलन ऐसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य को देखने का प्रयास करता है जो कि महिलाओं के कल्याण को केवल स्वास्थ्य के मुद्दे से ही नहीं जोड़ता बल्कि आजीविका, अधिकारों, हिंसा (सामाजिक, पारिवारिक, सामुदायिक और चिकित्सकीय), खाद्य और लोगों विशषकर महिलाओं के जीवन पर असर डालने वाले सभी बड़े मुद्दों के साथ एकीकृत करता है।

एकदम शुरुआत से ही समा की एक प्रमुख चिंता यह रही है कि जनसंख्या वृद्धि के बारे में व्याप्त चिंता और राज्य द्वारा सुझाये जाने वाले जोर–जबर्दस्ती वाले उपायों के खिलाफ अपनी आवाज उठाई जाये। ये उपाय निरपवाद रूप से महिलाओं और वह भी निर्धन और अल्प सुविधाप्राप्त महिलाओं को अपना निशाना बनाते हैं। इस बाबत समा हानिकारक गर्भनिरोधकों की शुरुआत के खिलाफ अकेले अपने दम पर और साथ ही दूसरे गठबंधनों एवं नेटवर्कों में भी सक्रिय रहा है।[1] इन अभियानों में भागीदारी के जरिये समा ने जोर–जबर्दस्ती वाली नीतियों की बराबर आलोचना की है और नई गर्भ निरोधक टेक्नोलाजियों को बाजार में उतारे जाने और परिवार नियोजन के ऐसे कार्यक्रम की भर्त्सना की है जिसका कि महिलाओं के ऊपर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। कई सालों के अभियान के बाद आंदोलन के सामने काफी बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। गर्भ निरोधक के रूप में इंजेक्शन की पक्षधर लाबी – राज्य, दवा कंपनियां, चिकित्सा प्रतिष्ठान और कुछ एनजीओ'ज – ने अभियान द्वारा उठाये गये मुद्दों को निराधार बताते हुए खारिज करना शुरू कर दिया। इस लाबी ने इन मुद्दों को थोड़ी सी सनकी महिलाओं के दिमाग की उपज बताया।[2] इसकी वजह यह थी कि महिलाओं के ऊपर इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधकों के वास्तविक प्रभाव पर ताजातरीन जानकारी और ठोस आंकड़ों का सच में अभाव था। इस स्थिति से चिंतित होकर समा ने 2003 में इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधकों, विशेषकर डेपो–प्रोवेरा से उपयोगकर्ताओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभाव पर अध्ययन का आयोजन किया। ''जाहिर वास्तविकताएं'' शीर्षक रिपोर्ट में प्रस्तुत अध्ययन के नतीजे न केवल चौंकाने वाले थे बल्कि वे फिर से वही बात कह रहे थे जिस बात का उल्लेख इस अभियान से जुड़े महिला संगठन बार–बार करते आये थे। नतीजे बता रहे थे कि इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधकों का स्वास्थ्य पर बहुत खराब असर पड़ता है। ये इंजेक्शन महिलाओं को 'विकल्प' मुहैया कराने वाले नहीं अपितु पूरी तरह से असुरक्षित हैं और किसी भी हालत में इन्हें बाजार में या परिवार नियोजन कार्यक्रम में नहीं उतारा जाना चाहिए।

---

1. समा, सहेली, ऐडवा, जन स्वास्थ्य अभियान (जेएसए), मेडिको फ्रेंड्स सर्कल (एमएफसी) जैसे संगठनों के साथ नेटवर्क बनाकर काम करती है
2. सहेली रिपोर्ट (1999) एनफ इज एनफ

दो बच्चों का मानक

जोर–जबर्दस्ती वाली जनसंख्या नीतियों के खिलाफ काम करते हुए समा को विभिन्न राज्यों से जानकारी मिलती रही है कि निचले स्तरों पर जनसंख्या नियंत्रण के नाम पर मानवाधिकारों के गंभीर उल्लंघन हो रहे हैं। इनमें से ज्यादातर मामलों की तरफ या तो ध्यान नहीं जाता या फिर जनसंख्या के हौवे से त्रस्त समाज का एक तबका इसको अपनी मौन सहमति दे देता है। संयोग देखिये, यह वही तबका है जहां से योजना बनाने वाले, डॉक्टर और वैज्ञानिक अधिकतर आते हैं। इससे चिंतित होकर समा ने विभिन्न राज्यों के जनसंख्या नीति के दस्तावेजों को जमा करने और उनका विश्लेषण करने का काम शुरू किया। विश्लेषण से पता चलता है कि कुछ राज्यों ने अपनी स्वयं की जनसंख्या नीतियां विकसित की थीं जो कि अक्सर ही राष्ट्रीय जनसंख्या नीति से टकराती थीं और भारतीय संविधान के नीति–निर्देशक सिद्धांतों के साथ ही उन बहुत सी अंतरराष्ट्रीय संधियों का भी उल्लंघन करती थीं, जिन पर भारत ने हस्ताक्षर किये हुए हैं। जहां राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के प्रलोभन देने वाले उपायों की तीखी आलोचना होने पर उसने इन्हें कम से कम कागजों पर जारी नहीं रखा, वहीं राज्यों की उक्त जनसंख्या नीतियां हतोत्साहित करने वाले सख्त उपायों का प्रस्ताव करती हैं। इन उपायों में शामिल है राशन कार्ड, सरकारी स्कूलों में शिक्षा और सरकारी नौकरियों से वंचित करना, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदि के लिए तरह–तरह के कल्याण कार्यक्रमों को वापस लेना। आगे, ये नीतियां दो बच्चों की नीति को जबरन लागू करने का प्रस्ताव रखती हैं, जो कि दलितों, आदिवासियों और आमतौर पर गरीबों के व्यापक तबकों को स्थानीय निकायों का चुनाव लड़ने से रोक देता है।

समा और अन्य महिला संगठनों की फौरी चिंता का विषय यह था कि दो बच्चों की नीति को थोपे जाने से जनसंख्या के आंकड़ों पर तो असर पड़ने से रहा अलबत्ता इससे लिंग चयनी गर्भपातों और बालिका शिशु हत्या को जरूर बल मिलेगा। इससे होगा यह कि देश में लिंग अनुपात की पहले से ही शोचनीय अवस्था और बदतर हो जाएगी। सरकार की तरफ से यह खुद को ही परास्त करने वाली कवायद थी। जहां एक तरफ वह सभी स्थानीय सरकारी निकायों में महिलाओं के लिए न्यूनतम एक तिहाई सीटों के आरक्षण के द्वारा लोकतंत्र और महिला सशक्तिकरण की हिमायत कर रही थी वहीं दूसरी तरफ दो बच्चों की नीति को लागू करके वह इन्हें निष्फल कर रही थी। समा को अखबारी लेखों और जमीनी स्तर के संगठनों के अपने नेटवर्क के जरिये इस मानक के दुरुपयोग और महिलाओं के ऊपर इसके विपरीत प्रभाव के बारे में पर्याप्त प्रमाण मिले। अनेक राज्यों[3] में फील्ड अध्ययनों से पता चलता है कि इस अनिवार्य अयोग्यता ने तरह–तरह की धांधलियों और मानव त्रासदियों को जन्म दिया। इनसे यह भी पता चला कि अयोग्य करार देकर अपनी सीटों से हटाये जाने वाले लोग बेहद गरीब और समाज में एकदम अलग–थलग पड़ीं महिलाएं (और पुरुष) – दलित और आदिवासी थे।

---

3. हिमाचल प्रदेश में एसयूटीआरए; आंध्र प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, उडीसा, राजस्थान राज्यों में महिला चेतना मंच; और मध्यप्रदेश में भूख परियोजना द्वारा कराये गये अध्ययन।

अध्ययन की पृष्ठभूमि

उस समय जबकि समा ने फील्ड में काम करने वाले संगठनों से यह जानकारी प्राप्त करना शुरू किया कि दो बच्चों की नीति के थोपे जाने के चलते पंचायत सदस्यों का अयोग्य करार दिया जाना मध्यप्रदेश में जोर पकड़ता जा रहा है, भोपाल में गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ'ज), शिक्षा पंचायती राज, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में सक्रिय संगठनों के साथ भोपाल में बैठक का आयोजन किया गया। स्थानीय स्थिति और हाशिये पर पड़े तबकों के ऊपर दो बच्चों की नीति के असर और इससे जुड़े अन्य मुद्दों पर चर्चाओं का आयोजन किया गया। इस दौरान हुई बातचीत में यह जरूरत महसूस की गई कि इन अनुभवों का व्यवस्थित अध्ययन किया जाये और उन्हें लिपिबद्ध किया जाये ताकि इस मुद्दे के पक्ष में किये जाने वाले को मजबूती प्रदान की जा सके। क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर बड़े पैमाने के मीडिया कवरेज के बावजूद समा को लगा कि गैर पक्षधर रिपोर्टिंग ने गिने–चुने मामलों को ही सामने लाने का काम किया है। इस प्रकार जरूरत इस बात की है कि व्यवस्थित तरीके से ठोस अनुभवों को लिपिबद्ध किया जाये ताकि दो बच्चों की नीति के हाशिये पर पड़े तबकों के ऊपर और विशेषकर महिलाओं के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव पर प्रकाश डाला जा सके।

अध्ययन की रूपरेखा

उद्देश्य

इस अध्ययन ने उन सदस्यों (पुरुषों एवं महिलाओं) के अनुभवों को दर्ज करने का प्रयास किया जो कि पंचायती राज संस्थाओं पर दो बच्चों की नीति को लागू किये जाने के कारण अयोग्य करार दिये गये थे या अयोग्य करार दिये जाने की प्रक्रिया का विषय बने थे।

विशेषरूप से अध्ययन का उद्देश्य था

- सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही दायरे में महिलाओं के जीवन पर पड़ने वाले इस नीति के असर को समझने के लिए और इस बात का आकलन करने के लिए कि यह नीति किस हद तक महिलाओं की स्वायत्तता, परिवार में उनकी स्थिति और राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी भागीदारी पर प्रभाव डालती है;
- गरीबों एवं समाज के अल्प सुविधाप्राप्त समूहों के राजनीति में भाग लेने पर दो बच्चों की नीति के असर का परीक्षण करने के लिए;

अध्ययन इलाके के रूप में मध्यप्रदेश को चुनने का कारण

यह अध्ययन मध्यप्रदेश के चुनिंदा इलाकों में किया गया। मध्यप्रदेश को चुनने का एक प्रमुख कारण यह था कि 1993 में पंचायती राज अधिनियम को लागू करने के अलावा यह पंचायती राज संशोधन अधिनियम को क्रियान्वित करने में दृढ़ रहा है। इसने जनवरी 2000 में दो बच्चों की नीति को सम्मिलत कर लिया जो कि जनवरी 2001 से प्रभावी हो गया। फिर भी, इस नीति को लेकर न तो किसी प्रकार की जागरूकता थी और न ही अक्तूबर 2001 तक कोई कार्रवाई की गई। इसके बाद राज्य सरकार ने 45 जिलों के लिए 570 मामलों की शुरुआती सूची जारी की। पन्ना जिले में 2002 में एक भी मामला नहीं था लेकिन 2003 में अयोग्य ठहराये जाने के 152 मामले थे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मध्यप्रदेश का विकास सूचकांक नीचे है, निरक्षर महिलाओं की संख्या अधिक है, शिशु एवं मातृ मृत्यु दर एवं अस्वस्थता बहुत अधिक है। इसके अलावा सामाजिक विकास के दूसरे खराब संकेतकों की भरमार है। इन स्थितियों में जोर–जबर्दस्ती वाली जनसंख्या नीति केवल पहले से ही मौजूद समस्याओं में नये आयाम जोड़ने का ही काम कर सकती है।

समा का ऐसे एक्टिविस्ट ग्रुपों, गैर सरकारी संगठनों और मध्यप्रदेश के जनांदोलनों के साथ लंबे समय से रिश्ता रहा है जो कि पक्ष लेने के लिए इस मुद्दे को उठाना चाहते थे। फिर भी समा ने महसूस किया कि इस मसले को उठाने से पहले इस मुद्दे पर शोध कार्य जरूरी है, यह केवल जानकारी एकत्र करने के लिए ही नहीं वरन समस्या की गहराई और गतिकी को समझने के लिए भी आवश्यक है।

जिलों एवं नमूनों के आकार के चयन का कारण

अध्ययन का आयोजन मध्यप्रदेश के 12 जिलों – बेतुल, हरदा, होशंगाबाद, जबलपुर, कटनी, रायसेन, रतलाम, शिवपुरी, सेहोर, सिवनी, विदिशा और पन्ना – में किया गया। शुरू–शुरू में यह मानकर 20 जिलों का चयन किया गया कि सरकारी रिकार्डों से आंकड़े मिल जाएंगे। परंतु सम्बद्ध अधिकारियों के पास अयोग्य करार दिये गये लोगों के बारे में बुनियादी किस्म के बहुत कम आंकड़े उपलब्ध थे। अतः मध्यप्रदेश के कुल 45 जिलों में से उक्त 12 जिलों को निम्नलिखित आधार पर चिन्हित किया गया :

- सरकारी रिकार्ड और मामलों की उपलब्धता;
- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों और सामान्य जातियों का प्रतिनिधित्व;
- अयोग्य ठहराये गये प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या

भोपाल में पंचायत एवं सामाजिक न्याय विभाग से 45 जिलों के अयोग्य ठहराये गये सदस्यों की सूची प्राप्त की गयी। इस सूची से उन प्रतिनिधियों की संख्या का पता चला जिन्हें कि प्रत्येक जिले से हटाया गया था। परंतु, इस सूची से लिंग या जाति के बारे में अलग से आंकड़े नहीं प्राप्त हुए। इससे शुरू–शुरू में नमूने के आकार अध्ययन के ऐसे नमूने के निर्माण के बारे में निर्णय लेने में दिक्कतें आईं जो कि लिंग एवं जाति के सभी संभव संयोजनों को अपने में समाहित करे।

जिला विशेष के ब्यौरे जिलाधिकारियों के कार्यालय से प्राप्त किये गये। फिर भी 12 जिलों में से केवल नौ जिलों के ब्यौरे ही आधिकारिक स्रोतों से प्राप्त हो सके। बाकी तीन जिलों के ब्यौरे स्थानीय अखबारों से प्राप्त किये गये क्योंकि अयोग्य ठहराये गये लोगों की सूची अखबारों में छपवाई गई थी। अधिकारियों के पास से मिलने वाली नौ सूची में से केवल दो सूची में ही अपने पदों पर से हटाये गये लोगों की जाति एवं उनके लिंग के बारे में अलग से जानकारी उपलब्ध थी।

इस सूची और प्रभावित लोगों की अध्ययन में शामिल होने के लिए उपलब्धता और तत्परता के आधार पर नमूने के आकार में एक जिले से दूसरे जिले में अंतर था। औसतन, प्रत्येक जिले से 10 लोगों का चयन किया गया, जिसमें कि विभिन्न सामाजिक समूहों से पुरुषों और महिलाओं को लिया गया था।

कार्यप्रणाली

अध्ययन में आंकड़ों के प्राथमिक एवं गौण दोनों स्रोतों को उपयोग में लाया गया। साक्षात्कार की योजना और फोकस ग्रुप डिस्कसन्स (एफजीडी) के आधार पर अंतरंग साक्षात्कार लेने की पद्धति के जरिये शुरुआती आंकड़ों को जमा करने के लिए सहभागिता[4] वाले तरीके को काम में लाया गया। पंचायत एवं सामाजिक न्याय विभाग, जिलाधिकारी कार्यालय और जनपद पंचायत के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) के पास से उपयुक्त जानकारी प्राप्त की गई। ग्रामीणों, एनजीओ प्रतिनिधियों और पत्रकारों के साथ चर्चा करके भी जानकारी हासिल करने का प्रयास किया गया। गौण महत्व के आंकड़ों के अन्य स्रोत अखबारी कतरनें, नीति संबंधी दस्तावेज, लेख, शोध अध्ययन और विधानसभा की बहसें थीं। साक्षरता, शिक्षा और शांति, एकता एवं आत्मनिर्भरता के लिए विज्ञान हेतु कार्यरत संगठन मध्यप्रदेश भारत ज्ञान विज्ञान समिति (एमपीबीजीवीएस) ने अध्ययन शुरू करने के लिए समा के साथ सहयोग किया और इसके

---

4. प्रतिभागी अध्ययन गुणात्मक कार्यप्रणाली है जहां पर अध्ययन में शामिल व्यक्ति चर्चा के बहाव को निर्देशित करता है; प्रश्नावली या सर्वेक्षण के तरीके की तुलना में यह जानकारी प्राप्त करने का ज्यादा अंतःक्रियात्मक उपकरण है। यह इस युक्ति पर आधारित है कि समाज में अभी तक हाशिये पर पड़े तबकों की बात सुनना जरूरी है क्योंकि वे अपनी रोजमर्रा की हकीकत को बेहतर तरीके से सामने रखते हैं।

अलावा मध्यप्रदेश के तीन जिलों में साक्षात्कारों को संचालित करने की जिम्मेदारी उठाई। दो अन्य संगठनों एमपी विज्ञान सभा और एमपी जन स्वास्थ्य अभियान ने इस पहलकदमी को अपना सहयोग प्रदान किया।

आंकड़े जमा करने के उपकरण

साक्षात्कार की अर्द्ध निर्मित योजना के साथ–साथ फोकस ग्रुप डिस्कसन्स (एफजीडी) दोनों को ही तरीकों उपयोग में लाकर जानकारी जुटाने का काम किया गया। एफजीडी ने प्रतिभागियों के सामाजिक आर्थिक परिचय और अयोग्य ठहराये जाने की प्रक्रिया से जुड़े मुद्दों पर जानकारी एकत्र करने में सहायता की। समुदाय के साथ मधुर सम्बंध बनाने के साथ–साथ एफजीडी ने दो बच्चों की नीति के साथ ही राजनीतिक, जातिगत और लैंगिक गतिकी से जुड़े दृष्टिकोणों और बोधों का पता भी लगाया।

आंकड़े जुटाने की प्रक्रिया

प्रतिभागियों को सूचित करने और उनसे यह जानने के लिए कि क्या वे अध्ययन में भाग लेना चाहेंगे दो बार यात्राएं की गईं। इसके अलावा लोगों से इस बारे में भी पूछा गया कि वे किस समय बातचीत करना पसंद करेंगे। बहुत से गांवों की तीन बार यात्राएं की गईं क्योंकि प्रभावित लोग शुरुआती दौरों के दौरान उपलब्ध नहीं थे। बातचीत प्रायः देर शाम या ऐसे समय की गई जबकि प्रतिभागी अपने कामों में व्यस्त नहीं थे। अधिकतर बातचीत उनके घरों पर की गई। परंतु थोड़े से साक्षात्कारों का आयोजन खेतों एवं दूसरी ऐसी जगहों पर किया गया जो कि प्रतिभागियों के लिए सुविधाजनक थीं।

फील्ड स्टाफ का चयन एवं प्रशिक्षण

फील्ड स्टाफ की टीम दो महिलाओं एवं दो पुरुषों से मिलकर बनी थी। प्रमुख अध्ययनकर्ता लंबे समय से पंचायती राज संस्थाओं, शिक्षा समूहों और सामाजिक आंदोलनों से जुड़ी हुई थीं। वे राज्य में महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर काम भी करती थीं। बेहतर संवाद और बातचीत में विनम्रता बनाये रखने के लिए फील्ड टीम का चयन स्थानीय तौर पर किया गया। इस काम के लिए एमपीबीजीवीएस ने अपनी स्थानीय टीम से दो ऐसे लोग दिये जो कि शिक्षा एवं खाद्य सुरक्षा से जुड़े मुद्दों से जुड़े हुए थे। इसके अलावा, स्थानीय जांचकर्ताओं के पास समुदाय पर आधारित संगठनों के साथ काम करने का अनुभव था।

समा की शोध टीम और प्रमुख जांचकर्ता ने स्थानीय जांचकर्ताओं को शुरुआती प्रशिक्षण प्रदान किया। प्रशिक्षण के दौरान निम्नलिखित पहलुओं को कवर किया गया।

- अध्ययन के उद्देश्य के बारे में समझदारी कायम करना
- अध्ययन की रूपरेखा
- साक्षात्कार कार्यक्रमों की व्याख्या
- साक्षात्कार लेने का कौशल

प्रशिक्षण के दौरान लिंग एवं महिलाओं की स्थिति पर परिप्रेक्ष्य को विकसित करने के लिए विशेष रूप से जोर दिया गया। जांचकर्ता पंचायती राज और जनसंख्या नीतियों की राजनीति समेत कार्यक्रमों एवं नीतियों की मूलभूत जानकारी से लैस थे। जांच–पड़ताल करने के हुनर को मांजने के लिए नकली साक्षात्कारों का आयोजन किया गया। उन्हें आंकड़े जुटाने की दूसरी गुणात्मक तरकीबों में भी प्रशिक्षित किया गया।

समयावधि

अध्ययन का आयोजन मई 2003 से अक्तूबर 2004 के बीच किया गया। शुरुआती महीना और अध्ययन का आधा समय मुद्दे का संधान करने और स्थानीय समूहों के पास जाने में बीता। अगला एक महीना अवधारणा का विकास करने और अध्ययन के उद्देश्य को तय करने में व्यतीत हुआ। इसके बाद वाले महीने में स्थानीय जांचकर्ताओं और प्रमुख जांचकर्ता की पहचान करने और उनका चयन करने का काम किया गया। और दो महीने कार्यक्रम और पड़ताल सूची (चेकलिस्ट) को विकसित करने, फील्ड परीक्षण और इन सबको अंतिम रूप देने में खर्च हुए। इसके बाद आने वाले दो महीनों में स्थानीय जांचकर्ताओं को प्रशिक्षण देने का काम किया गया। सबसे पहले उन्हें मूलभूत उद्देश्य और अध्ययन में उनकी भूमिका के बारे में बताया गया और फिर साक्षात्कार लेने और आंकड़े जमा करने के कौशल से पुनः परिचित कराया गया। लगातार चार महीनों तक फील्ड से वास्तविक आंकड़ों को जमा करने और विभिन्न स्रोतों से गौण महत्व के आंकड़ों को हासिल करने का काम किया गया। अनुवाद, कमी–बेशी दूर करने, फील्ड फालो–अप्स और आंकड़ों के विश्लेषण एवं रिपोर्ट को लिखने में और छह महीने लग गये।

अध्ययन के बाद भोपाल में एमपीबीजीवीएस और एमपी–जेएसए की सहायता से प्रभावित पीआरआई प्रतिनिधियों, मीडिया, विधि विशेषज्ञों और स्थानीय समूहों के साथ प्रचार कार्यशाला और पत्रकार सम्मेलन आयोजित किया गया।

नैतिक प्रयोजन

बातचीत की अनौपचारिक प्रक्रिया के जरिये सूचना के साथ सहमति प्राप्त की गयी और कुछ मामलों में पत्र भेजकर अध्ययन के उद्देश्य के बारे में जानकारी दी गयी। समूचे अध्ययन काल के दौरान प्रतिभागियों को सम्मान देने और उनकी स्वायत्तता एवं निजता की हिफाजत करने

का ख्याल रखा गया। उनके द्वारा मुहैया करायी गयी समस्त जानकारी और रिकार्डों को गोपनीय रखा गया। साक्षात्कारों के दौरान प्रतिभागी इसके लिए स्वतंत्र थे कि वे चाहें तो किसी प्रश्न का जवाब न दें और जब चाहें अध्ययन से अलग हो जाएं। प्रतिभागियों की मंजूरी लेकर कुछ विशिष्ट उल्लंघनों को कार्रवाई और क्षतिपूर्ति के लिए विभिन्न पंचाटों के सामने प्रस्तुत किया गया।

आंकड़ों की विवशता और सीमाएं

राज्य स्तर, जिला स्तर और ब्लाक स्तर पर जुटाई गई सूचना से मिले अयोग्य ठहराये गये लोगों के आंकड़ों में विसंगतियां थीं। यहां तक कि जिन मामलों में जिला एवं राज्य स्तर पर एक जैसी सूचना उपलब्ध थी उनके बीच भी असंगतियां थीं। बहुत से मामलों में जिला एवं ब्लाक स्तर पर वास्तविक संख्या जिला स्तर पर रिकार्ड की गयी संख्या से आगे बढ़ी हुई थी। उदाहरण के लिए राज्य स्तरीय सूची के अनुसार सेहोर में अयोग्य ठहराया गया केवल एक व्यक्ति था जबकि ब्लाक स्तरीय सूची 49 अयोग्य अभ्यर्थियों को दिखा रही थी। इसके अलावा सूचियों में सरपंच, पंच के रूप में चिन्हित लोगों और उन लोगों के बीच कुछ असमानताएं थीं, जो कि गांव के स्तर पर वास्तव में पद पर विराजमान थे। इसके अलावा, कुछ जिलों में जानकारी देने में अधिकारियों की तरफ से बेचैनी और उदासीनता देखने में आई।

दो बच्चों की नीति और उसके निहितार्थ से जुड़ी अति संवेदनशीलता को देखते हुए पंचायत सदस्यों विशेषकर महिलाओं से उनकी प्रतिक्रिया प्राप्त करने में मुश्किलों का सामना तो करना ही था। गांवों में निजी एवं सार्वजनिक जीवन के बीच अलगाव की महीन रेखा ने साक्षात्कारों के दौरान निजता एवं गोपनीयता की धारणाओं के आगे सतत चुनौती उपस्थित की। हालांकि अध्ययन करने वाली टीम ने तरह–तरह की रणनीति अपनाई लेकिन काम तो आखिर मुश्किल था ही। कई बार ऐसा भी हुआ कि अंतरंग बातचीत के लिए पर्याप्त अवकाश और गुंजाइश नहीं थी। कई बार परिवार के दूसरे सदस्य साक्षात्कार के दौरान मौजूद होते थे और अंतःक्रिया के दौरान हस्तक्षेप करने की कोशिश करते थे। ऐसे भी मामले देखने में आये जबकि महिला सरपंच के पति की पहचान सरपंच के रूप में की गयी थी और पूरा गांव उसे सरपंच मानकर चलता था। ऐसी स्थिति में महिलाओं से बात करना मुश्किल हो गया था क्योंकि पति इस बात पर जोर देता था कि उसी से बात कर ली जाए। कई बार ऐसा हुआ कि महिला पंच या सरपंच से बात करना मुश्किल हो गया क्योंकि उनके पति ने फील्ड टीम के साथ उन्हें बात नहीं करने दी। कुछ मामलों में अगड़ी जातियां (पटेल) आरक्षण के प्रावधानों का लाभ उठाती हुई पाई गईं और इसके लिए उन्होंने छाया उम्मीदवारों के रूप में दलित महिलाओं का समर्थन किया। इन स्थितियों में पटेलों ने इस बात पर जोर दिया कि साक्षात्कार उनके परिसर और उनकी उपस्थिति में लिये जाएं।

अयोग्य ठहराये गये लोगों में गुस्सा साफ–साफ देखा जा सकता था क्योंकि वे कानून की शरण लेने में असमर्थ थे। वे दो बच्चों की नीति के पक्ष में हैं या उसके खिलाफ इस पर बात करने के बजाय उन्होंने अपने को अयोग्य ठहराये जाने को प्रायः निजी तौर पर लिया। अपनी प्रतिक्रिया में इन लोगों ने कहा, ''मैं ही क्यों वे लोग क्यों नहीं।'' अयोग्य ठहराये गये कुछ अभ्यर्थियों ने प्रतिक्रियावादी रुझान प्रदर्शित किया। इसकी वजह यह थी कि झूठे आरोपों, घरेलू हिंसा, ऋणग्रस्तता आदि के चलते उन्हें अपमान सहने पड़े थे। इस वजह से प्राथमिक मुद्दे से ध्यान हटाने की ओर उन्मुख हुए थे। उन्हें चर्चा के तहत प्रमुख मुद्दों पर अपनी राय देने के लिए तैयार कर पाना मुश्किल साबित हुआ।

फिर भी, इन सीमाओं के बावजूद हमारी शोध टीम ने यथासंभव अधिकतम जानकारी प्राप्त करने और जाति, वर्ग और लिंग के मुद्दों की व्यापक बहसों के भीतर उन्हें विश्लेषित करने और ग्राम्य समुदाय के विभिन्न सामाजिक–आर्थिक समूहों पर दो बच्चों की नीति के असर और उसके निहिताशय को समझने की कोशिश की।

अध्याय 3

नतीजे

यह अध्याय फील्ड से मिले आंकड़ों को विश्लेषित करने और उसके नतीजों पर सोच–विचार करने का प्रयास करता है। गहन विश्लेषण से तथाकथित जनसंख्या 'विस्फोट' के असंख्य आयामों का पता चला। इससे पता चलता है कि दो बच्चों की नीति किस प्रकार से दलितों, महिलाओं और आदिवासियों के हाशिये पर पड़े समूहों को असमर्थ बनाने के लिए पक्षपात करने वाले तरीके के रूप में काम करता है। इसके अलावा यह राजनीतिक प्रक्रिया से युवाओं को अलग तो करता ही है। आबादी का यह हिस्सा प्रजनन संबंधी आयु समूह का होता है जिसके ऊपर दो बच्चों की नीति का असर पड़ा है। अयोग्य ठहराये जाने के कारण अच्छी–खासी संख्या में युवा महिलाएं एवं पुरुष अपने निर्वाचित पदों से हाथ धो बैठे हैं। इसी प्रकार उच्च जाति के पढ़े–लिखे लोगों द्वारा बहुत से मामलों में निचली जाति के अनपढ़ पंचों और सरपंचों के खिलाफ झूठी शिकायते दर्ज कराने के लिए इसका प्रभावी तरीके से इस्तेमाल किये जाने से दलितों के लिए इस आधार पर अयोग्यता जातीय राजनीति की लड़ाई में एक हथियार साबित हुई है। जैसा कि प्रारंभिक आंकड़े दर्शाते हैं अयोग्य ठहराये गये लगभग 50 प्रतिशत उम्मीदवार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं। इसने महिलाओं को और अरक्षित और पहले से भी अधिक कम सुविधाप्राप्त बनाया है। जहां एक तरफ बच्चों की संख्या की बाबत निर्णय लेने का शायद ही कोई अधिकार होता हो वहीं उन्हें एक और बच्चा होने के परिणामों को भुगतना पड़ता है। इसकी वजह यह है कि पदभार संभालने वाले उनके पति नवजात को अपना बताने से इनकार कर देते हैं। जब स्वयं महिला ही वास्तव में पद पर विराजमान होती है तो तीसरा बच्चा होने की आड़ लेकर उसके अधिकारों को हड़प लिया जाता है और ऐसी स्थिति में अक्सर ही उसकी जगह पर सास या दूसरे लोग काबिज हो जाते हैं। यह अध्ययन महिलाओं और समाज के दूसरे अल्प सुविधाप्राप्त समूहों की दशा का एकदम स्पष्ट चित्र उकेरता है।

इस अध्ययन ने धर्म की भूमिका और किसी व्यक्ति के पास कितने बच्चे हो सकते हैं या वह कितने बच्चों की चाहत रख सकता है इस पर कुछ दिलचस्प टिप्पणियां प्राप्त करने का काम किया है। यहां इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि स्टडी टीम का विषय केंद्रित सामूहिक चर्चाओं और दो बच्चों के मानक पर गंभीर विचार–विमर्श के दौरान इस मुद्दे से परिचय हुआ। हालांकि अध्ययन शुरू करते समय दो बच्चों के मानक के किसी धार्मिक आयाम का अनुमान नहीं लगाया गया था पर प्रतिभागियों द्वारा व्यक्त की प्रतिक्रियाओं ने इस मुद्दे के इर्द–गिर्द चर्चा शुरू कर दी।

अयोग्य प्रतिनिधियों का परिचय

अध्ययन से जुड़े शुरुआती प्रतिभागी पंचायती राज संस्थाओं के ऐसे प्रतिनिधि थे जो कि दो बच्चों की नीति के क्रियान्वयन के जरिये अयोग्य ठहराये गये थे। 12 जिलों के विभिन्न गांवों के 128 प्रतिभागियों का साक्षात्कार लिया गया।

उक्त प्रतिभागी अधिकतर सरपंच, पंच या उप सरपंच थे और थोड़े से पार्षद, पंचायत सचिव आदि थे। अयोग्यता प्रक्रिया के क्रियान्वयन के समय 43 सरपंच थे (28 पुरुष और 15 महिलाएं); 69 पंच थे (46 पुरुष और 23 महिलाएं); 11 उप सरपंच थे (नौ पुरुष और दो महिलाएं) और शेष पांच (चार पुरुष और एक महिला) पार्षद, पंचायत सचिव आदि के पद पर थे।

अध्ययन से पता चलता है कि 56 प्रतिशत सरपंच, 46 प्रतिशत पंच, 54.5 प्रतिशत सभी उप सरपंच और अन्य पदों पर के 20 प्रतिशत लोग या तो दलित थे या आदिवासी। समस्त प्रतिभागियों में तकरीबन 50 प्रतिशत (49.22) लोग दलित या आदिवासी थे। इस सैम्पल में मुस्लिम समुदाय से अयोग्य ठहराये गये तीन प्रतिनिधि थे लेकिन किसी दूसरे अल्पसंख्यक धार्मिक समुदाय से एक भी व्यक्ति नहीं था।

भूमिहीनों में 60 प्रतिशत और उन लोगों में 65 प्रतिशत दलित और आदिवासी थे जिनके पास दो एकड़ तक की जमीन थी। जमीन रखने वाले कुटंबों में जमीन का मालिकाना और उस पर नियंत्रण प्रायः परिवार के पुरुष सदस्य के हाथों में था। हर महीने 1500 रुपये से अधिक कमाने वाले लोगों में से कमोबेश 69 प्रतिशत लोग अन्य पिछड़ा वर्ग और सामान्य श्रेणियों से सम्बंध रखते थे। अध्ययन में शामिल सभी दलितों एवं आदिवासियों में 50 प्रतिशत लोगों के कुटुंब की औसत आय 750 रुपये प्रति माह से कम थी और दूसरे 35 प्रतिशत लोग 750–1000 रुपये के आय वर्ग में आते थे। कुल अशिक्षित प्रतिभागियों में से 87 प्रतिशत लोग दलित और आदिवासी थे। समस्त अशिक्षित महिलाओं में से 90 प्रतिशत महिलाएं दलित एवं आदिवासी समुदायों से ताल्लुक रखती थीं।

साक्षात्कार देने वाले 128 लोगों (87 पुरुष और 41 महिलाएं) ने साफ तौर पर संकेत दिया कि दो बच्चों की नीति ने दलितों, आदिवासियों और महिलाओं की भारी संख्या को प्रभावित किया है।

भाग – दो

प्रमुख नतीजे

"मैं राजनीति को अपना कैरियर बनाना चाहता हूं। यही वजह है कि मैंने अपनी एक बेटी को, जो कि 26 जनवरी के बाद पैदा हुई थी, गोद दे दिया । मैंने यह कदम अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण उठाया।" – पुरुष पंच, 37 साल

अ. गोद लेना

128 प्रतिभागियों में हमें छह मामले ऐसे देखने को मिले जहां पर तीसरे बच्चे को गोद दे दिया गया था। बहुत से मामलों में महिलाएं अपने बच्चे को अपने से दूर नहीं करना चाहती थीं। लेकिन, चूंकि परिवार में किसी भी प्रकार के फैसले पर उनकी वश नहीं होता था इसलिए उन्हें मजबूरन अपने पति की इच्छा के आगे सिर झुकाना पड़ता था। उक्त छह में से पांच मामलों में गोद के लिए दिया जाने वाला शिशु लड़की थी। इस बाबत कानून अनिर्णायक रहा है। जब अयोग्यता नोटिस प्राप्त करने के बाद कुछ अयोग्य प्रतिनिधियों ने अदालत की शरण ली तो उन्हें इस आधार पर स्थगनादेश मिल गया कि उन्होंने अपने तीसरे बच्चे को गोद दे दिया था। परंतु, सर्वोच्च न्यायालय ने 2003 में जावेद एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य के दौरान यह फैसला सुनाया कि दो हंसते–खेलते बच्चों के बाद तीसरा बच्चा पैदा होने और उसके जीवित बने रहने से पहले किसी को अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। और सिर्फ इस वजह से कि दम्पति ने गोद देकर एक बच्चे से खुद को अलग कर लिया है, अयोग्यता खत्म होने को नहीं आती।" यह फैसला आने के बाद जिला अदालतों ने अपने पहले के स्थगनादेश रद्द कर दिये और इन अभ्यर्थियों को आखिरकार का अयोग्यता का सामना करना पड़ा। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था दी थी लेकिन वास्तव में बच्चा गोद दे देने को पंचायत में अपना पद बनाये रखने के सबसे आसान तरीके के रूप में देखा गया था। उदाहरण के लिए, उक्त पंच के मामले में – उसके पास चार बेटे और एक बेटी थी – आखिर में पैदा हुई बेटी को गोद दे दिया गया था।

"मेरे पास तीन बच्चे हैं, सबसे छोटा बच्चा निर्धारित तारीख के बाद पैदा हुआ था। मेरे क्षेत्र के लोगों ने मुझे अपने एक बच्चे को गोद देने के लिए राजी कर लिया।" – पुरुष सरपंच

हालांकि इस सरपंच का सबसे छोटा बच्चा बेटा था जो कि निर्धारित अवधि के बाद पैदा हुआ था लेकिन उसने अपनी बेटियों में से एक गोद दे दिया था।

एक महिला सरपंच के पास दो बेटियां थीं और उसका पति पंच था। तीसरे बच्चे का जन्म नवंबर 2001 में हुआ था। उप सरपंच और कुछ पंचों ने उसे उसके पद से हटवाने के लिए

एक हस्ताक्षरयुक्त पत्र जिलाधीश को सौंपा। महिला सरपंच के अनुसार, ''मैंने 26 जनवरी 2001 के पहले गर्भ धारण किया था, लेकिन अपने पद को बनाये रखने के लिए मैं गर्भपात नहीं कराना चाहती थी। मैंने बच्चे को जन्म दिया। मैंने अपनी दूसरी बेटी को गोद दे दिया है। अतः यह मानक मेरे ऊपर नहीं लागू होता।''

ऐसी स्थितियों में जहां पर बच्चे को गोद दे दिया जाता है, उसके लड़की होने के संभावना अधिक होती है। इसकी वजह यह है कि हमारे समाज में बेटे को वरीयता प्रदान की जाती है। वंश का चलाते रहने के लिए बेटे को दी जाने वाली तरजीह संरचना और परिवार के आकार को प्रभावित करती है। अतएव बड़े अंशों में सामाजिक रूपांतरण और लैंगिक रिश्तों में परिवर्तन के बिना लड़कियों की नियति एक या दूसरे तरीके से दुर्भाग्यपूर्ण बनी रहेगी।

ब. जबरन गर्भपात

साक्षात्कारों के दौरान एकदम साफ तौर पर यह बात उभर कर सामने आई कि बहुत से मामलों में पतियों ने अपनी पत्नियों को गर्भपात कराने के लिए बाध्य किया था। हालांकि अधिकतर महिलाओं ने इस बात को खुलकर स्वीकार नहीं किया लेकिन एक महिला सरपंच ने अपना अनुभव बयान किया था।

> *''तीसरे बच्चे के साथ जब मैं गर्भवती थी तो मेरे पति ने फैसला किया कि मुझे गर्भपात करवा लेना चाहिए ताकि पंच के अपने पद पर मैं बनी रह सकूं। वे मुझे पास के कस्बे में डॉक्टर के पास ले गये। लेकिन डॉक्टर ने गर्भपात नहीं कराने की सलाह दी क्योंकि बच्चा शीघ्र ही पैदा होने वाला था। बालिका शिशु का जन्म हुआ'' – एमजे, महिला सरपंच।*

हाल ही प्रकाशित एक खबर कहती है, ''बेतुल में एक सरपंच ने अपनी कुर्सी बचाने के लिए अपनी पत्नी को सात महीने के भ्रूण का गर्भपात कराने के लिए बाध्य किया। यह घटना पिछले साल अक्टूबर महीने की है और महिला के शिकायत दर्ज कराने की कोशिश करने पर पुलिस ने प्राथमिकी दर्ज करने से इन्कार कर दिया। लेकिन अभी बिल्कुल हाल में वह पुलिस आयुक्त के पास गई और यह शिकायत की कि उसके पति ने गर्भपात कराने के लिए उस पर दबाव डाला और जब उसने इन्कार किया तो उसे जबरन डॉक्टर के पास ले जाया गया जिसने

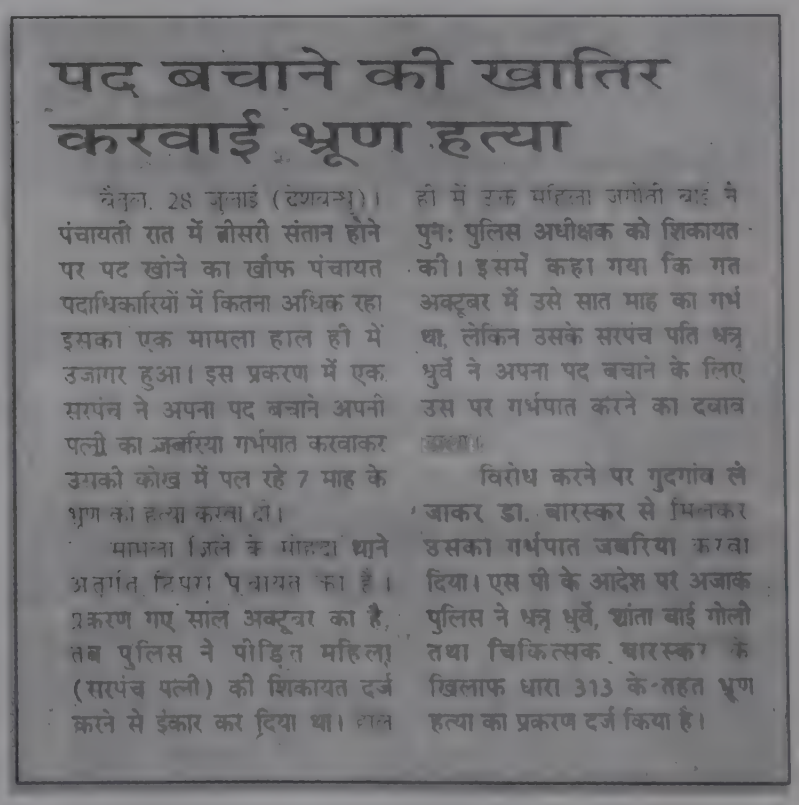

पद बचाने की खातिर करवाई भ्रूण हत्या

बैतुल, 28 जुलाई (देशबन्धु)। पंचायती रात में तीसरी संतान होने पर पद खोने का खौफ पंचायत पदाधिकारियों में कितना अधिक रहा इसका एक मामला हाल ही में उजागर हुआ। इस प्रकरण में एक सरपंच ने अपना पद बचाने अपनी पत्नी का जबरिया गर्भपात करवाकर उसकी कोख में पल रहे 7 माह के भ्रूण की हत्या करवा दी।

मामला जिले के मोहदा थाने अंतर्गत टिपरा पंचायत का है। प्रकरण गए साल अक्टूबर का है, तब पुलिस ने पीड़ित महिला (सरपंच पत्नी) की शिकायत दर्ज करने से इंकार कर दिया था। हाल ही में एक महिला उपोती बाई ने पुनः पुलिस अधीक्षक को शिकायत की। इसमें कहा गया कि गत अक्टूबर में उसे सात माह का गर्भ था, लेकिन उसके सरपंच पति भन्नू धुर्वे ने अपना पद बचाने के लिए उस पर गर्भपात करने का दबाव डाला।

विरोध करने पर गुदगांव ले जाकर डा. बारस्कर से मिलकर उसका गर्भपात जबरिया करवा दिया। एस पी के आदेश पर अजाक पुलिस ने भन्नू धुर्वे, शांता बाई गोलो तथा चिकित्सक बारस्कर के खिलाफ धारा 313 के तहत भ्रूण हत्या का प्रकरण दर्ज किया है।

बच्चा गिरा दिया। एसपी ने पति एवं डॉक्टर दोनों के खिलाफ अनुच्छेद 313 के तहत मामला दर्ज कर लिया है।" (देशबंधु, 29 जुलाई, 2005)

स. बेटे को वरीयता – लिंग चयनी गर्भपात, बालिका शिशुहत्या

हमें ऐसी प्रतिक्रियाएं भी प्राप्त हुईं जो कि एकदम खुले तौर पर या फिर परोक्ष रूप से बेटे की जोरदार चाहत की तरफ इशारा करती थीं।

"यह अनुचित बात है कि हमें बेटा प्राप्त करने से रोका जा रहा है। यह कैसा कानून है?"

"मेरी पहली संतान लड़की थी। मैंने समझा कि मेरे सिर्फ लड़कियां ही होंगी। लेकिन ईश्वर मेरे ऊपर कृपालु था और अब मेरे पास तीन बच्चे हैं – एक बेटी और दो बेटे। अब और मुझे क्या चाहिए?" – जीपी

" सरकार को उन लोगों के बारे में सोचना चाहिए जिनके पास केवल बेटियां हैं। मेरे पास चार बेटियां हैं। मुझे एक बेटे की चाह है। सरपंच बने रहने की बजाय बेटा पाकर मैं ज्यादा खुश रहूंगा।" – पुरुष सरपंच (अन्य पिछड़ा वर्ग)

हालांकि प्रसवपूर्व लिंग निर्धारण और लिंग चयनी गर्भपात की तरह के संवेदनशील विषय पर जानकारी प्राप्त करना बेहद मुश्किल होता है फिर भी प्रसवपूर्व लिंग चयन के मामलो को दर्ज किया गया। अध्ययन के दौरान जानकारी में आये समझा–बुझाकर गर्भपात करवाने और गर्भपात के प्रयासों के कुछ मामले बालिका शिशु के जन्म से जुड़े प्रतीत होते हैं जो कि संयोग से तीसरी संतान भी थी।

0–6 आयु समूह में दो बच्चों के मानक की शुरुआत के बाद मध्यप्रदेश के खास–खास जिलों में लिंग–अनुपात में कमी आई है। राज्य द्वारा बच्चों की संख्या पर लगाई गई बंदिशों के कारण इसके पीछे लिंग चयन एक कारण हो सकता है। इस तरह की नीति लिंग–चयनी अनुपातों में वृद्धि को गति प्रदान करता है, जिससे देश में पहले से ही भयावह लिंग–अनुपात की स्थिति और ज्यादा खराब हो जाती है। 1991 और 2001 के बीच 0–6 वर्ष के आयु समूह में लिंग–अनुपात 945 से गिरकर सीधे 927 पर पहुंच गया।

दो बच्चों की नीति ने निश्चित रूप से बलात गर्भपातों की संख्या को बढ़ाया है। यह लिंग चयनी गर्भपात को आगे और गति प्रदान करता है जो कि लिंग–अनुपात को आगे और भी खराब करने का ही काम करेगा। उड़ीसा और राजस्थान में महिला चेतना मंच द्वारा इस नीति के उलझावों पर कराया गया अध्ययन दर्शाता है कि इस नीति के क्रियान्वयन ने बालिका

HP-125
12777

12 जिलों का लिंग अनुपात

क्रमांक	जिला	लिंग–अनुपात (औसत)	लिंग–अनुपात (0–6)	लिंग–अनुपात (आयु 7 से अधिक)
1	शिवपुरी	858	909	846
2	विदिशा	876	943	861
3	रायसेन	880	943	867
4	होशंगाबाद	898	927	892
5	पन्ना	907	932	901
6	सेहोर	908	935	902
7	जबलपुर	910	925	907
8	हरदा	919	926	917
9	कटनी	941	951	939
10	रतलाम	959	960	958
11	बेतुल	965	968	965
12	सिवनी	982	980	983

निम्न लिंग अनुपात वाले अन्य जिले

क्रमांक	जिला	लिंग–अनुपात (औसत)	लिंग–अनुपात (0–6)	लिंग–अनुपात (आयु 7 से अधिक)
1	भिंड	829	829	829
2	मुरैना	821	829	820
3	ग्वालियर	847	849	847

स्रोत : भारत की जनगणना 2001, मध्यप्रदेश, शृंखला 24

भ्रूणों के गर्भपात का कारण बनने वाले प्रसवपूर्व लिंग निर्धारण परीक्षणों में वृद्धि को जन्म दिया है। एसयूटीआरए द्वारा कराये गये अध्ययन से पता चलता है कि अधिकतम बाल लिंग–अनुपात वाले जिलों में अयोग्य ठहराये गये लोगों की संख्या सर्वाधिक थी, वहीं निम्नतम लिंग अनुपात वाले जिलों में बिल्कुल भी नहीं या बहुत थोड़ी सी अयोग्यताएं देखने में आई।

इससे साफ पता चलता है कि दो बच्चों की नीति वास्तव में लिंग–चयनी गर्भपातों के जोखिम में वृद्धि करता है।[1] बेटे की बहुत अधिक चाहत रखने वाले समाज में लोग यहां तक कि इस तरह की नीतियों के ढांचे के भीतर भी यह सुनिश्चित करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं कि उनके पास बेटे हों।

हमारे समाज में, जहां पर परंपरा के अनुसार कम से कम एक बेटा होना ही चाहिए ताकि वंश–परंपरा कायम रहे, जोर–जबर्दस्ती वाले नीति को धता बताने का काम किया जाता है। इस क्रम मे सिर्फ बालिका शिशु को गोद दिया जाता है और सामाजिक कर्तव्य और राजनीतिक ताकत दोनों को बनाये रखने के लिए नवजात बालिका शिशु को निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता है। इसके नतीजे के तौर पर बहुत संभव है कि स्थिति भयावह बन जाए क्योंकि हमारे समाज में महिलाओं का अनुपात दयनीय रूप से बहुत कम है। इन स्थितियों में दो बच्चों की नीति को लागू करने को किसी भी प्रकार से उचित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यह न केवल गरीबों के साथ भेदभाव करता है बल्कि महिलाओं के प्रति भी बहुत अधिक अन्यायपूर्ण है।

द. महिलाओं को छोड़ना और उनका त्याग करना

सरपंच क को नवंबर 2001 में तीसरा बच्चा पैदा होने के कारण अयोग्यता की नोटिस मिली। उन्होंने यह दावा करते हुए इसका खंडन किया कि उसकी पत्नी नवंबर 1999 से उससे अलग उत्तर प्रदेश में अपने मायके में रह रही थी। उसने यह घोषणा भी की कि उनकी जुदाई के समय से उनके बीच यौन सम्बंध नहीं थे और यह कि उसने उसे व्यभिचार के आधार पर तलाक दे दिया है। (नवभारत टाइम्स, 16 अप्रैल, 2002)

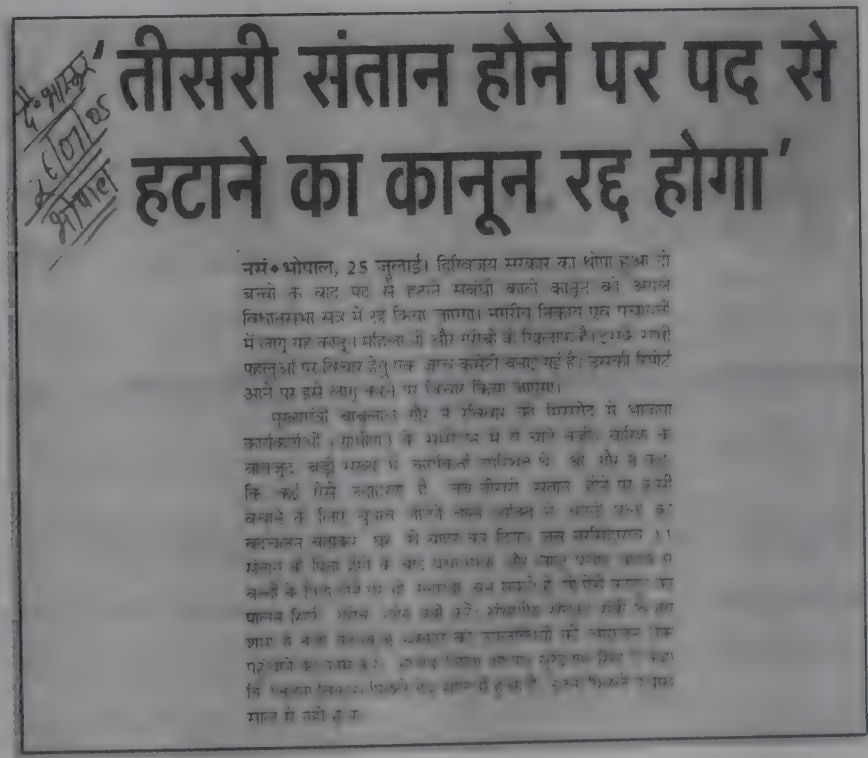
'तीसरी संतान होने पर पद से हटाने का कानून रद्द होगा'

नर्म• भोपाल, 25 जुलाई। दिग्विजय सरकार का थोपा हुआ तो बच्चे के बाद पद से हटाने संबंधी काले कानून को अगले विधानसभा सत्र में रद्द किया जाएगा। नगरीय निकाय एवं पंचायतों में लागू यह कानून महिला और गरीबों के विरुद्ध है। इसके सभी पहलुओं पर विचार हेतु एक जांच कमेटी बनाई गई है। रिपोर्ट आने पर इसे लागू करने पर विचार किया जाएगा।

वर्तमान मुख्यमंत्री बाबूलाल गौड़ ने भी कहा है कि पंचायत के कुछ अधिकारियों ने अपनी कुर्सी बचाने की खातिर अपनी पत्नियों के अनैतिक होने का दावा किया और उन्हें छोड़ दिया (दैनिक भास्कर, 26 जुलाई, 2005), और इस तरह से इन लोगों ने तीसरे बच्चे के जन्म में अपनी जिम्मेदारी से पिंड छुड़ा लिया।

जो बात साफ–साफ नजर आती है वह यह है कि इस तरह की नीति के फलस्वरूप महिलाओं

---

1 दास, अभिजीत (2005) टू चाइल्ड नार्म : हाऊस नैऐसरी एण्ड हाऊ जस्ट? www.sahyogindia.com

को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह से कष्ट सहन करना पड़ता है। एक तरफ उन्हें सीधे उनके पदों से हटा दिया जाता है, दूसरी तरफ उन्हें पंच या सरपंच की पत्नियां होने का खामियाजा भुगतना पड़ता है, जो कि कानून के फंदे से बचने के लिए तीसरे बच्चे का समूचा बोझ अपनी पत्नियों के ऊपर डालने की कोशिश करते हैं।

नसबंदी विफल होने के बावजूद अयोग्य ठहराया

कटनी जिले से एनएस ने हमें सूचित किया है कि पड़ोसी जिले में एक महिला सरपंच को नसबंदी करा चुकने के बावजूद तीसरा बच्चा हुआ। उसे उसके पद से हटा दिया गया हालांकि इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी। हालांकि अपने सीमित सैम्पल में हमें ऐसे मामले देखने को नहीं मिले पर समूह चर्चाओं और स्थानीय प्रेस की रिपोर्टों में ऐसे बहुत से मामले आये जहां पर प्रतिनिधियों को इस तथ्य के बावजूद अयोग्य ठहरा दिया गया था कि उनका आखिरी बच्चा नसबंदी के विफल होने के कारण पैदा हुआ था। यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा और दुर्भाग्य से ऐसी वास्तविकता है जो कि लोगों में तब तक भय उत्पन्न करती रहेगी जब तक इस तरह का कानून लागू रहेगा और उस पर अमल किया जाता रहेगा।

हरियाणा का इसी प्रकार का एक मामला इस समस्या के बारे में दिलचस्प अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। हरियाणा की एक सरपंच एमबी ने नसबंदी करवाई थी। नसबंदी विफल हो गयी थी और अतंतः उसने तीसरी बार गर्भ धारण कर लिया। दो बच्चों की नीति के फलस्वरूप उसे सरपंच के पद से हटा दिया गया। उसने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की और यह तर्क प्रस्तुत किया कि चूंकि इस खामी का जिम्मेदार वह अस्पताल है जहां उसने नसबंदी करवाई थी, इसलिए उसे उसके पद से नहीं हटाया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने जो फैसला सुनाया उसमें बच्चे के लिए क्षतिपूर्ति तो शामिल थी लेकिन सम्बंधित अधिकारियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई। कानून ने एमबी और इस तरह के दूसरे प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराये जाने पर भी न तो गलती को स्वीकार किया और न ही राज्य से माफी मांगने या क्षतिपूर्ति देने की मांग की।

युवक–युवतियों की भागीदारी को हतोत्साहित करता है

''हमें पता नहीं था, लेकिन अब मेरी मां को सरपंच द्वारा पंच बना दिया गया है'' – एक महिला सरपंच।

अध्ययन से यह भी पता चला कि अयोग्य ठहराये गये वे लोग 30 से नीचे के आयु वर्ग के थे। यह नीति राजनीतिक प्रक्रिया में युवक–युवतियों की भागीदारी को बाधित करता है, हालांकि उसने ठीक इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चुनाव लड़ने की उम्र को 26 से कम करके 21 साल कर दी है। इस नीति के फलस्वरूप यह प्रजनन संबंधी आयु समूह के युवक और युवतियां ही हैं जो कि विशेष रूप से प्रभावित हो रहे हैं। राष्ट्र के युवा निर्णयकर्ताओं के

उल्लेखनीय हिस्से को अयोग्यता की इस प्रक्रिया विशेष के जरिये सत्ता के ढांचे से हटा दिया गया है। विडम्बना देखिये, जहां युवतियों को राजनीतिक प्रक्रिया से बाहर किया जा रहा है वहीं संभावित पुरुष उम्मीदवारों की मांओं को युवतियों द्वारा खाली किये गये पदों के लिए नामित किया जा रहा है ताकि 33 प्रतिशत आरक्षण को भरा जा सके।

युवतियों और उनके बच्चों के लिए इसके दूरगामी निहिताशय होंगे और यह अशक्तिकरण की प्रक्रिया शुरू करने की ओर ले जाएगा। गर्भ निरोधक उपायों और दूसरी स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और उन तक पहुंच के अभाव को देखते हुए युवा महिलाओं और पुरुषों के स्थानीय शासन की प्रक्रिया से ही बाहर चले जाने की संभावना है। इस प्रक्रिया में बने रहने की इच्छा रखने वाले लोग इस कानून की जद से बाहर बने रहने के लिए तरह–तरह के तरीकों का सहारा लेने के लिए बाध्य होंगे।

भाग–3

अयोग्यता प्रक्रिया का क्रियान्वयन

प्रतिभागियों ने सूचित किया कि अयोग्यता की प्रक्रिया पंचायत सचिव और पंचायत के अन्य सदस्यों की रिपोर्टों के आधार पर शुरू हुई। नियमानुसार, इस तरह की रिपोर्ट के आधार पर जन्म प्रमाणपत्र, जन्म पंजीकरण और अन्य सम्बद्ध विभागों से सूचना की पुष्टि करनी होती है और रिपोर्ट की विश्वसनीयता को जांचने के लिए जिलाधिकारी की अदालत द्वारा सघन जांच का आयोजन किया जाना होता है। अगर सूचना सही पाई जाती है तो प्रतिनिधि को पद से निलंबित कर दिया जाता है। प्रभावित व्यक्ति इस फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है।

हालांकि चुनाव की तारीख पर अयोग्य नहीं है, लेकिन अगर इन पदों पर विराजमान कोई व्यक्ति अधिनियम के लागू होने के एक साल बाद बच्चे को जन्म देकर अयोग्यता को अपने ऊपर लेता है तो वह अयोग्यता का विषय बनता/बनती है और वह अपने पद पर बने रहने के अयोग्य बन जाता/जाती है। अयोग्यता एक ऐसे बच्चे के जन्म के द्वारा आती है जो कि अधिनियम बनने के एक साल बाद पैदा हुए अतिरिक्त बच्चे समेत जीवित बच्चों की संख्या में दो से अधिक की वृद्धि का कारण बनता है। अगर इस कारक पर विवाद होता है तो निदेशक को जांच कराने और पद को खाली घोषित करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। निदेशक का फैसला सरकार के पास की जाने वाली अपील के अधीन होता है। निदेशक को पद पर विराजमान उस व्यक्ति को अपना पक्ष रखने का वाजिब अवसर देना होता है जिसे अयोग्य ठहराया जाना होता है। उक्त रक्षा कवच प्राकृतिक न्याय की जरूरतों को संतुष्ट करते हैं।

संदर्भ, सुप्रीम कोर्ट का फैसला, जावेद बनाम हरियाणा, 2004

अ. कानून के बारे में जागरूकता/जानकारी का अभाव

"हम दो बच्चों की नीति पर इस तरह के किसी कानून से अवगत नहीं थे। जब सरपंच ने मुझे बताया कि मुझे पद से इसलिए हटाया गया कि मेरे पास तीन बच्चे थे, जब जाकर मुझे पता चला कि इस तरह का कोई कानून है।" – पंच एसबी

एसबी अकेला नहीं था। भारी संख्या में प्रतिभागियों ने बताया कि उन्हें इस नीति के बारे में पहले से कोई जानकारी नहीं थी; और न ही अधिकारियों ने उन्हें ऐसी कोई सूचना दी थी कि इस तरह का कानून लागू किया जाने वाला है। उनमें से अधिकतर लोगों ने इसके बारे में तब जाकर जाना जबकि उन्हें अयोग्यता की नोटिसें मिलीं। साक्षरता के निम्न स्तर और सूचनाओं तक पहुंच की कमी के कारण प्रतिभागियों में अधिकतर इस स्थिति में नहीं थे कि कानून के ब्यौरे के बारे में पूछताछ कर सकें या स्पष्टीकरण मांग सकें। इसके चलते कानून के एकाएक थोप दिये जाने पर वे असहाय हो गये।

ब. अधिसूचना की व्यवस्था

अध्ययन बताता है कि अधिकतर प्रतिनिधियों को वे नोटिसे मिलीं जो कि जिलाधिकारी कार्यालय से जारी हुई थीं। 109 प्रतिभागियों को लिखित अधिसूचना प्राप्त हुई। उन लोगों में से, जिन्हें लिखित नोटिसें प्राप्त हुई थीं, 12 लोगों ने उन्हें डाक से प्राप्त किया, अन्य लोगों ने उसे सीईओ के कार्यालय से या पंचायत सचिव के जरिये प्राप्त किया। 12 प्रतिभागियों को तो कोई नोटिस ही नहीं प्राप्त हुई थी और उन्हें पंचायत के दूसरे सदस्यों या जन समुदाय के मुंह से यह जानकारी मिली कि उन्हें पद से हटा दिया गया है।

"मुझे किसी भी प्रकार का लिखित आदेश नहीं मिला बल्कि सिर्फ यह मौखिक सूचना दी गई कि मेरे खिलाफ किसी प्रकार की जांच की जानी है। मेरे पास इस नीति के बारे मे कोई जानकारी नहीं थी।" – जीबी, दलित सरपंच, होशंगाबाद।

"मुझे कोई नोटिस नहीं मिली। पद पर से हटाये जाने से पहले मुझे दो बच्चों की नीति के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। मुझे अपनी अयोग्यता के बारे में अखबार से पता चला।" – बी. बी. सरपंच (सामान्य) विदिशा

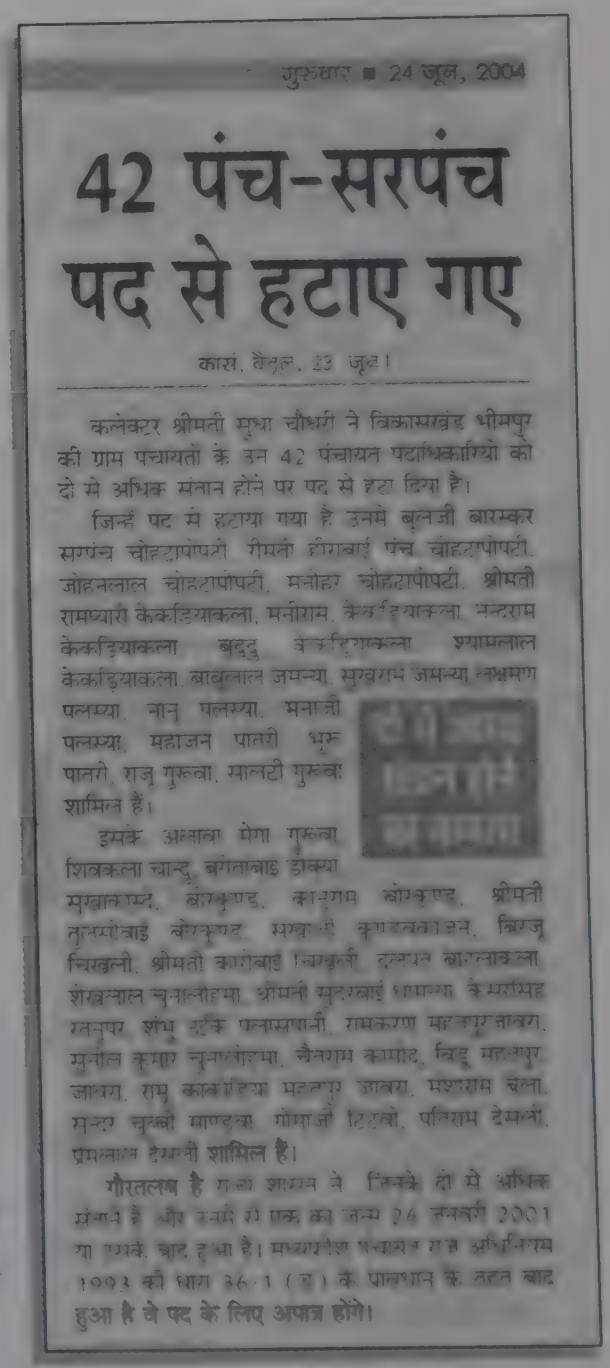

गुरुवार ■ 24 जून, 2004

42 पंच-सरपंच पद से हटाए गए

कासं. बैतूल, 23 जून।

कलेक्टर श्रीमती सुधा चौधरी ने विकासखंड भीमपुर की ग्राम पंचायतों के उन 42 पंचायत पदाधिकारियों को दो से अधिक संतान होने पर पद से हटा दिया है।

जिन्हें पद से हटाया गया है उनमें बुलजी बारस्कर सरपंच चोहटापोपटी, श्रीमती हीराबाई पंच, चोहटापोपटी, जोहनलाल चोहटापोपटी, मनोहर चोहटापोपटी, श्रीमती रामप्यारी केकड़ियाकला, मनीराम, केकड़ियाकला, नन्दराम केकड़ियाकला, बद्दु केकड़ियाकला, श्यामलाल केकड़ियाकला, बाबूलाल जमन्या, सुखराम जमन्या, लक्ष्मण पलम्या, नानू पलम्या, मनाजी पलम्या, महाजन पातरी, भूरू पातरी, राजू गुरूवा, सालटी गुरूवा शामिल हैं।

इसके अलावा मेगा गुरूवा, शिवकला चान्दू, बगेताबाई डोक्या, सुखलाल्प्पं, बोरकुण्ड, कालूराम बोरकुण्ड, श्रीमती तुलसीबाई बोरकुण्ड, सुखलाल कुण्डवलाजन, बिरजू चिखली, श्रीमती कारोबाई चिखली, दलपत बारलाकला, शेखलाल चुनालोहमा, श्रीमती सुदरबाई धामन्या, केसरसिंह रतनपुर, शंभू हरिक पलासपानी, रामकरण महलपुर जावरा, सुनील कुमार चुनालोहमा, नैनराम कामोद, बिंदू महलपुर जावरा, रामू कालीदिया महलपुर जावरा, मंशाराम चेला, सुन्दर चुन्नी माण्डवा, गोमाजी टिटवी, पनिराम देवली, प्रेमलाल देवली शामिल हैं।

गौरतलब है राज्य शासन ने जिनके दो से अधिक संतानें हैं और उनमें से एक का जन्म 26 जनवरी 2001 या उसके बाद हुआ है। मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1993 की धारा 36-1 (ङ) के प्रावधान के तहत बाद हुआ है वे पद के लिए अपात्र होंगे।

दो सदस्यों ने अपने नाम स्थानीय अखबारों में जिलाधिकारी कार्यालय द्वारा जारी सार्वजनिक नोटिस में देखे थे। बेतुल जिले में अध्ययन के दौरान हमने पाया कि एक दिन में 42 सदस्यों (पंच, सरपंच और उपसरपंच) को जिलाधीश द्वारा नोटिसें जारी की गई थीं। नोटिस पाने वाले लोग जिलाधिकारी कार्यालय की इस आकस्मिक कार्रवाई से आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पहले से कोई सूचना या जानकारी नहीं प्रदान की गई थी।

स. तीसरे बच्चे के जन्म की निर्धारित तारीख और अयोग्यता

यह बात देखने में आई कि दो बच्चों की नीति के क्रियान्वयन में अधिनियम के प्रारंभ की तारीख (26 जनवरी 2000) से एक साल की अवधि पर नहीं चला गया। स्टडी सैम्पल में पंचायती राज संस्थाओं में बहुत सी महिला प्रतिनिधियों या पंचायत प्रतिनिधियों की पत्नियों को, जो कि अधिनियम के अमल में आने के समय गर्भवती थीं, को अभद्र तरीके से उनके पद से हटा दिया गया था। स्टडी में ऐसे 14 मामले पाये गये।

अयोग्यता की प्रक्रिया निर्धारित तारीख के बाद तीसरे बच्चे के जन्म पर निर्भर करती है। अयोग्यता का प्रवर्तन अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख से एक साल की अवधि के लिए स्थगित कर दिया गया है। एक से अधिक बच्चों वाला कोई व्यक्ति एक साल के अंदर–अंदर के या अधिनियम के प्रारंभ के आसपास के गर्भ की देखभाल करता है तो वह अयोग्य नहीं है। साल भर के लिए स्थगन अधिनियम के प्रारंभ के आसपास के गर्भधारण का ख्याल रखता है, जबकि गर्भावस्था की अवधि सामान्य रूप से नौ महीने की होती है। अगर कोई महिला अधिनियम के प्रारंभ के समय गर्भवती हुई है तो इस तरह के दंपतियों में से कोई भी अयोग्य नहीं होगा।

ऐसे भी मामले देखने में आये जहां पर बच्चा हालांकि निर्धारित तारीख के पहले पैदा हुआ था फिर भी सम्बंधित प्रतिनिधियों को उनके पद से हटा दिया गया। अध्ययन के दौरान इस प्रकार के नौ मामलों की सूचना दी गई। एक महिला सदस्य को निर्धारित तारीख के पांच दिन पहले बच्चा हुआ था फिर भी उसे उसके पद से हटा दिया गया। एलबी का कहना है, ''मेरा तीसरा बच्चा 21 जनवरी 2001 को हुआ था जबकि यह मानक 26 जनवरी 2001 से क्रियान्वित किया जाता है। मुझे पद से हटा दिया गया। मैंने सबूत के तौर पर टीकाकरण कार्ड प्रस्तुत किया। चूंकि बच्चे का जन्म घर पर हुआ था इसलिए उसका जन्म पंजीकृत नहीं हुआ था। उन्होंने मुझे जन्म प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने को कहा लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकी।'' उसने आगे जोड़ा, ''यह विडंबना ही है कि अपने पद को बचाने के लिए मुझे अपने बच्चे के जन्म को साबित करना पड़े। मैं खर्च नहीं वहन कर सकने के कारण अदालत नहीं गई।''

स्टडी इस बात के संकेत देती है कि ऐसे बहुत से मामले थे जहां पर बच्चे की आयु या जन्म लेने वाले आखिरी बच्चे की जन्म तिथि पर विवाद था, रिकार्डों और साक्ष्य के साथ छेडछाड़

की गई और झूठे प्रमाणपत्र मुहैया कराये गये। अध्ययन के दौरान इस तरह के चार मामले सामने आये। ऐसे तीन मामले देखने में आये जहां पर जन्म लेने वाले आखिरी बच्चे की जन्मतिथि को लेकर विवाद था। यह स्थिति गांवों की थी, अधिकतर बच्चे घर पर पैदा हुए थे और उनका जन्म पंजीकृत नहीं था। परिणामस्वारूप बहुत से मामलों में जन्म लेने वाले आखिरी बच्चे की जन्मतिथि को साबित करना काफी मुश्किल कवायद बन गई। बड़े पैमाने पर बच्चों का जन्म घर पर होने और उसका पंजीकरण नहीं होने से भी छल–नियोजन और पैदाइश की गलत प्रस्तुति को बल मिला।

तीसरे बच्चे–जुड़वां–के जन्म पर त्रुटिपूर्ण परिभाषा

''हमारे पास जुड़वां बच्चे थे और मुझे पद से हटा दिया गया। हमें नहीं पता था कि हमारे यहां जुड़वां बच्चें पैदा होगे। मैंने हाईकोर्ट से स्थगनादेश प्राप्त किया। मैंने जुड़वां बच्चों के मुद्दे पर इस नीति को चुनौती दी।'' – होशंगाबाद जिले से दलित पुरुष सरपंच

जुड़वां बच्चों के मुद्दे पर इस नीति के लागू होने के बारे में मध्यप्रदेश की जनसंख्या नीति में कुछ नहीं कहा गया था। केवल राजस्थान की जनसंख्या नीति ने इस मुद्दे को संबोधित किया। जुड़वां बच्चों के मामले जैसी अस्पष्ट स्थिति की बाबत मानक में अपर्याप्त दिशा–निर्देश माता–पिताओं के लिए आगे और भी दुविधा उत्पन्न करता है। अयोग्यता का सामना करने की स्थिति में यह नीति बदले में गर्भस्थ शिशु की जांच के मामलों में वृद्धि करेगा और इस तरह से अजन्मे बालिका शिशु के लिए खतरे को कई गुना बढ़ा देगा।

मध्यप्रदेश में हंगर प्रोजेक्ट के अध्ययन में इसी प्रकार के अनुभव सुनने में आये जहां पर एक महिला सरपंच को उस समय एक बच्चा था जबकि वह सरपंच बनी थी। बाद में जब उसे जुड़वां बच्चा हुआ तो उसे पद से हटा दिया गया। यह इस बात को प्रदर्शित करने वाला दूसरा उदाहरण है कि राज्य खुद से तय किये गये लक्ष्यों को छोड़कर नीतियां बनाने से पहले असल में वास्तविकताओं के बारे में कितना कम सोचते हैं।

सत्ता का दुरूपयोग

यह नीति कुछ ऐसे लोगों के लिए आसान तरीका बन गया जो कि व्यक्तिगत या राजनीतिक प्रतिशोध लेना चाहते थे। खासतौर पर ये उच्च जाति, उच्च वर्ग के लोग थे जो कि अपने प्रतिद्वंद्वियों को उनके पदों से हटाने के लिए इस कानून को उपयोग में ला रहे थे।

एक दलित पंच ने अपने अनुभवों का साझा करते हुए कहा, ''...और तो और मेरे साथ हाथापाई भी की गई लेकिन जब बाकी सभी तरीके काम नहीं आये तो मेरे प्रतिद्वंद्वियों ने मेरे खिलाफ इस कानून का उपयोग किया। मुझे और मेरी पत्नी दोनों को नोटिस मिला। लोग हमारे बारे

में तरह–तरह की बातें कर रहे हैं और हमारे ऊपर फब्ती कस रहे हैं। मेरे प्रतिद्वंद्वी भी हमारे ऊपर हंस रहे हैं।''

एक बार प्रक्रिया के शुरू हो जाने पर, फिर वह चाहे झूठे आधार पर क्यों न शुरू की गई हो, कानूनी कार्रवाई समेत निर्धारित प्रक्रियाओं के जरिये शिकायत को चुनौती देने और उसे रद्द कराने की जिम्मेदारी उस प्रतिनिधि के ऊपर आ जाती है जिसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई गई थी।

दो बच्चों की नीति को धता बताकर बच निकलने वाले और यह दावा करने वाले कि दो बच्चों की नीति को उनके मामले में क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लोग आमतौर पर वे थे जिनकी सूचना, संसाधनों और सत्ता तक पहुंच थी।

''मैंने कोई कदम इसलिए नहीं उठाया कि मुझे पता था कि कोई भी मुझे पद से नहीं हटा सकता। मेरे राजनीतिक सम्बंध दमदार लोगों से हैं।'' – पुरुष पंच (बीसी), पन्ना

क्रियान्वयन से जुड़ी दूसरी चिंताएं

बहुत से प्रतिनिधि सरकार के इस कदम को लेकर दुखी थे। उनका तर्क था कि दो बच्चों की नीति को या तो खत्म कर दिया जाना चाहिए या फिर विधायकों, सांसदों और मंत्रियों को भी इसके दायरे में लाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा, ''पानी ऊपर से नीचे आता है, नीचे से ऊपर नहीं।''

> *''राजनीति में कोई खास मायने नहीं रखने वाले और नीति–निर्धारण में सबसे नीचे रहने वाले हम लोगों को इसका दंश क्यों झेलना चाहिए? 7–8 बच्चों वाले सांसदों–विधायकों को क्यों बख्श दिया गया है?''*
>
> *''हमारे अधिकतर नेताओं के पास तीन से ज्यादा बच्चे हैं, वे उन्हें उनके पद से क्यों नहीं हटाते, लालू को देखो ... उनको तो निकालने की हिम्मत नहीं है।''*
>
> *''हमें उनसे दो बच्चों की नीति को उन मतदाताओं के ऊपर लागू करने के लिए कहना चाहिए जो कि चुनावों में मतदान करने के लिए आते हैं। चुनावों में खड़ा होने वाले व्यक्ति के पास केवल दो बच्चे होने चाहिए और चुनावों में मतदान करने वाले के पास भी दो से अधिक बच्चे नहीं होने चाहिए, केवल तभी हम इसके नतीजे को देख पाएंगे'' – इस तरह की टिप्पणियां साफ तौर पर पीड़ितों के आक्रोश और गुस्से को प्रतिबिंबित करती हैं।*

अयोग्य ठहराये गये कुछ प्रतिनिधियों ने कहा, ''अगर बच्चों की कितनी भी संख्या वाले पुरुषों और महिलाओं को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं प्रदान की जाती तो हिजड़े ही चुनावों में

खड़े होंगे और देश पर शासन करेंगे।'' इस तरह की प्रतिक्रियाएं निरुपाय लोगों के परवर्ती सदमे और असहायता के बाद बढ़ते गुस्से को प्रतिबिंबित करती हैं।

जनन क्षमता को नियंत्रित करने के तरीकों के बारे में जागरूकता का अभाव

''महिलाओं के कल्याण और जनन क्षमता के पैटर्न में बदलाव लाने में महिलाओं की भूमिका के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। भारत में महिलाओं को गर्भनिरोधक उपायों को अपनी मर्जी से अपनाने नहीं दिया जाता, जिसकी वजह से उन्हें बार–बार गर्भ धारण करना पड़ता है। बार–बार गर्भ धारण करने से उत्पन्न होने वाले खतरों और माताओं की ऊंची मृत्यु दर के बारे में कुछ न कहना ही बेहतर होगा। इस प्रकार इस बात को समझा जा सकता है कि जन्म दर में कमी का मामला अक्सर महिलाओं की स्थिति में सुधार और उनकी मुखरता से जुड़ा होता है।''

संदर्भ : ड्रेजे, जैन एवं सेन, अमर्त्य (2002) इंडिया : डेवलपमेंट एंड पार्टिसिपेशन

गर्भ निरोधकों के उपयोग के मुद्दे पर फील्ड से मिली टिप्पणियां परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने में दिलचस्पी को प्रतिबिंबित करती हैं। लेकिन इसके साथ–साथ वे सूचना के प्रसार, विभिन्न उपलब्ध विकल्पों के बारे में समुचित परामर्श और प्रदाता और उपयोगकर्ता के बीच की संवादहीनता के संदर्भ में मौजूदा कार्यक्रमों के नाकाफी होने के बारे में भी बहुत कुछ कह जाती हैं।

''...परिवार नियोजन के तहत तरह–तरह के कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए थे। अब यह कहना कि आपको तीन बच्चों की वजह से हटाया जा रहा है, पूरी तरह से अन्यायपूर्ण है।'' – डीके पुरुष सरपंच

''हमारे पास गर्भ निरोधक उपायों से जुड़ी कोई जानकारी नहीं है। आबादी जिस गति से बढ़ रही है उसका मुख्य कारण गर्भनिरोधक उपायों तक लोगों की पहुंच का नहीं होना है।'' – आईबी, पन्ना जिला

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 के परिणामों के साथ गर्भनिरोधक उपायों के वर्तमान उपयोग के लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 की तुलना से राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 के समय से, जबकि प्रसार 41 प्रतिशत था, गर्भनिरोधक उपायों को अपनाये जाने में 18 प्रतिशत वृद्धि का पता चलता है। इस अवधि में गर्भ निरोधक उपायों को अपनाने में महिला नसबंदी का हिस्सा 67 से थोड़ा बढ़कर 71 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1 राष्ट्रीय

परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 में महिला और पुरुष नसबंदी का हिस्सा कुल मिलाकर तकरीबन 75 प्रतिशत पर कमोबेश एक जैसा बना रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में यह लगभग 80 प्रतिशत बना रहा और शहरी क्षेत्रों में यह लगभग 6 प्रतिशत पर बना रहा। फिर भी, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण –2, 2001 की जनगणना के आंकड़ों और जनसंख्या को स्थिर रखने पर यूएनएफपीए की संक्षिप्त सूचना किट से पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि दर 1981–91 के दौरान 2.14 प्रतिशत प्रति वर्ष से गिरकर 1991–2001 के दौरान 1.93 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई।

पिछले 50 वर्षों में जनसंख्या वृद्धि दर	
1951–1961	1.96 प्रतिशत प्रति वर्ष
1961–1971	2.22 प्रतिशत प्रति वर्ष
1971–1981	2.20 प्रतिशत प्रति वर्ष
1981–1991	2.14 प्रतिशत प्रति वर्ष
1991–2001	1.93 प्रतिशत प्रति वर्ष

स्रोत : हेल्थ वाच यूपी–बिहार

2001 के दौरान समस्त विवाहित महिलाओं के लिए बच्चों की औसत संख्या 2.85 थी। भारत के पास प्रजनन संबंधी आयु समूह में युवाओं का ऊंचा अनुपात है। प्रति दंपति युवाओं के केवल एक या दो बच्चे होने पर भी मात्रा में वृद्धि इस वजह से अधिक है कि बच्चे पैदा करने वाले दंपतियों की संख्या ऊंची है।

निम्नलिखित तालिका कुछ राज्यों में गर्भनिरोधक सेवाओं की नहीं पूरी होने वाली जरूरत और वास्तविक जनन क्षमता को दर्शाती है :

राज्य	कुल जनन क्षमता दर	वांछित जनन क्षमता	परिवार नियोजन की पूरी नहीं हुई जरूरत
भारत	2.85	2.13	15.8
उत्तर प्रदेश	3.99	2.83	25.1
राजस्थान	3.78	2.57	17.6
मध्यप्रदेश	3.31	2.40	16.2
बिहार	3.49	2.58	24.5
उड़ीसा	2.46	1.90	15.5

स्रोत : राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2

इस पूरी नहीं हुई जरूरत की आड़ लेकर कुछ राज्यों की जनसंख्या नीतियां लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नुकसानदेह देर तक असर करने वाले हार्मोनल गर्भनिरोधकों को परिवार नियोजन कार्यक्रम में शामिल करने के लिए आगे बढ़ीं। इसे जो बात विरोधाभासी बनाती है वह यह है कि जनसंख्या नियंत्रण के लिए लक्ष्य निर्धारित करना सरकार का मुख्य उलझाव बन गया है। लेकिन ऐसा करने के बाद वह न तो दंपतियों के लिए न्यूनतम बुनियादी गर्भनिरोधक उपायों और न ही स्वास्थ्य सेवाओं को मुहैया कराने को लेकर चिंतित रहती है। वह गर्भनिरोध के लिए महिलाओं को यह जानते हुए भी निशाना बनाना जारी रखती है कि पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के भीतर बच्चों के जन्म को लेकर महिलाओं की बहुत कम राय ली जाती है।

भाग 4

अयोग्यता की प्रक्रिया के प्रति भिन्न–भिन्न प्रतिक्रियाएं

अयोग्यता की प्रक्रिया अलग–अलग प्रतिनिधि के पास जिलाधिकारी द्वारा भेजी जाने वाली नोटिस से जुड़ी होती है। यह नोटिस पंचायत या एसडीएम (परगना मजिस्ट्रेट) की तरह के किसी अन्य अधिकृत अधिकारी के जरिये पंजीकृत डाक द्वारा प्रतिनिधि के पास पहुंचाई जाती है। अधिकतर मामलों में लिखित नोटिस भेजी गई थी। परंतु थोड़े से मामले ऐसे भी थे जहां पर पंचायत ने प्रतिनिधियों को फैसले से मौखिक रूप से अवगत कराया।

नोटिस मिलने पर प्रतिनिधियों ने अपनी आगे की कार्रवाई तय की। प्रतिनिधियों ने जिस भी प्रकार की कार्रवाई या प्रतिक्रिया का सहारा लिया वह इस बात पर निर्भर करती थी कि अयोग्य प्रतिनिधि किस पद पर आसीन था, उस पद के महत्व को लेकर उसका बोध क्या था, मुकदमा दायर करने के लिए संसाधन जुटाने की उसकी क्षमता कितनी थी और यह कि पंचायती राज संस्था और परिवार के भीतर (विशेषकर महिलाओं के मामले में) निर्णयकारी शक्ति में बने रहने में उसका व्यक्तिगत हित कितना था। उन स्थितियों में जहां पर निर्वाचित प्रतिनिधि 'केवल नाम के थे' जबकि निर्णय लेने का काम दूसरों (प्रायः उच्च जाति, वर्ग) द्वारा किया जाता था, उनकी प्रतिक्रिया बाद वाली चीज पर निर्भर करती थी।

अ. नोटिस मिलने पर प्रतिभागियों की प्रतिक्रियाएं

कुल 43 सरपंचों में से 23 (53.48 प्रतिशत) ने हाईकोर्ट में; 9 (20.93 प्रतिशत) ने जिला अदालत में अपील दायर की, 5 सरपंच जिलाधिकारी के पास 2 एसडीएम के पास गये, 4 सरपंचों (2 पुरुष और 2 महिला) ने कोई कार्रवाई नहीं की। 4 में से 3 आदिवासी थे, जिनमें से दो महिलाएं थीं। 43 सरपंचों में से 24 (55.81 प्रतिशत) दलित और आदिवासी थे और 1 मुस्लिम समुदाय से संबंध रखता था।

सरपंच के पद वालों में से भारी संख्या में लोगों ने हाईकोर्ट के साथ–साथ जिला अदालत में भी अपील करने का फैसला किया। सरपंच को एक महत्वपूर्ण ओहदेदार के रूप में देखा जाता है और उसका चुनाव समुदाय के द्वारा किया जाता है। इसके अलावा यह पंचायत का सर्वाधिक ताकतवर और लुभावना पद भी होता है। सरपंच के बहुत से पद दलितों–आदिवासियों और महिलाओं के लिए आरक्षित थे।

69 प्रतिभागी (46 पुरुष और 23 महिलाएं) पंच थे। कुल प्रतिभागियों में से 51 अर्थात 73.91 प्रतिशत ने कोई कार्रवाई नहीं की। दो अयोग्य पंचों ने हाईकोर्ट की, 7 ने जिला अदालत की शरण ली और 7 जिलाधिकारी और 2 एसडीएम के पास गये।

सरपंचों की तुलना में कोई कार्रवाई नहीं करने वाले अयोग्य पंचों की संख्या काफी बड़ी थी। 78 प्रतिशत से अधिक महिला पंचों और 71 प्रतिशत से अधिक पुरुष पंचों ने कोई कार्रवाई नहीं की। हालांकि नोटिस मिलने पर कोई कदम नहीं उठाने का कारण सभी प्रवर्गों के लिए एक जैसा था पर बहुत से पंचों खासकर महिलाओं ने महसूस किया कि पंचायत में उनकी तो कोई भूमिका ही नहीं थी। बहुत से अयोग्य पंचों को लगा कि पद पर बहाली के लिए अपील करने का कोई मतलब नहीं।

> *"मैंने शिकायत इसलिए नहीं दर्ज कराई कि पंच होने से मुझे कुछ हासिल नहीं हुआ था। मैं गैर जरूरी सिरदर्दी लेना और किसी प्रकार का मुकदमा लड़ने के लिए अपना पैसा बर्बाद करना नहीं चाहती थी। मेरे पति भी नहीं चाहते थे कि मैं इस मसले को उठाने के लिए जिलाधिकारी के पास या अदालत जाऊं।" – दलित महिला पंच*

> *"पंच को पैसा नहीं मिलता लेकिन वह पंच बने रहना चाहता है क्योंकि यह पद प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है। पंच कुछ अच्छा काम भी करते हैं।" – दलित पुरुष पंच*

> *"पंच होने में कोई लाभ नहीं है। इसलिए मुकदमा दायर करने में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। अब मैं आगे चुनाव नहीं लड़ूंगा क्योंकि हम हरिजन पंचों को केवल गांव में उच्च जाति के लोगों के हाथों अपमानित होना पड़ता है।" – दलित पुरुष सरपंच*

उपर्युक्त वक्तव्य न केवल कानूनी कार्रवाई नहीं करने के पीछे के कारणों को उचित ठहराते हैं बल्कि शासन से मोहभंग और जातिगत राजनीति से हताशा के बोध के बारे में भी बताते हैं। ये दोनों बातें पहले से ही हाशिये पर पड़े समूहों को ज्यादा से ज्यादा शक्तिहीन बनाने के लिए एक अर्थ में आपस में मिल गई हैं।

अयोग्य ठहराये गये लोगों में से 11 उप सरपंच थे, जिनमें से 6 ने कोई कार्रवाई नहीं की। इनमें से कोई भी हाईकोर्ट नहीं गया, एक व्यक्ति जिला अदालत गया, 3 जिलाधिकारी के पास और एक एसडीएम के पास गया। आमतौर पर उपसरपंच के पद को महत्वपूर्ण पद के रूप में

नहीं देखा जाता क्योंकि उपसरपंच केवल सरपंच की अनुपस्थिति में ही काम कर सकता है और उसके पास सरपंच की अनुपस्थिति को छोड़कर बहुत अधिक अधिकार नहीं होते। उन 5 प्रतिभागियों में से जो कि इनके अलावा पद पर बने हुए थे, 2 लोगों ने हाईकोर्ट में अपील की, दो ने कोई कार्रवाई नहीं की और 1 महिला एसडीएम के पास गयी।

ब. कोई कार्रवाई नहीं करने का कारण

63 लोगों ने कोई कार्रवाई नहीं की। कार्रवाई नहीं करने के कारणों के बारे में बताने वाले लगभग 49 प्रतिशत लोगों ने ऐसा इसलिए नहीं किया कि उनके पास पैसे और समय का अभाव था या वे पढ़े–लिखे नहीं थे। 24.48 प्रतिशत को लगा कि पंच के 'पद' पर होने का कोई लाभ नहीं था क्योंकि इस पद के पास सरपंच जैसे अधिकार नहीं थे। बाकी लोगों ने कोई कार्रवाई इसलिए नहीं की कि सामुदायिक समर्थन का अभाव था, जानकारी या सूचना की कमी थी या इसलिए कि उनके बजाय उनके संबंधियों को पद सौंप दिया गया था। कोई कार्रवाई नहीं करने वालों में से 53 प्रतिशत लोग दलित और आदिवासी थे। महिलाओं की कुल संख्या के लगभग 32 प्रतिशत हिस्से ने कोई कार्रवाई नहीं की। (इसे और होना चाहिए क्योंकि कोई कार्रवाई नहीं करने वाली कुछ ऐसी महिलाओं को, जिन्होंने इसका कोई कारण नहीं बताया, इसमें शामिल नहीं किया गया है।)

अदालत या उपयुक्त अधिकारी के पास अपील करने की प्रक्रिया में खर्च होने वाली धनराशि 100 रुपये से लेकर 40 हजार रुपये तक थी। खर्च होने वाली धनराशि क्रमशः बढ़ती गयी थी। जिलाधिकारी और परगना मजिस्ट्रेट के पास शिकायत दर्ज कराने में सबसे कम पैसों की जरूरत पड़ी; इसके बाद जिला अदालत में अधिक पैसे लगे और फिर हाईकोर्ट में मुकदमा दायर करने में सबसे ज्यादा पैसे खर्च हुए।

"मैं एक दलित महिला हूं। मैं पढ़ी–लिखी नहीं हूं। हम बहुत गरीब हैं। मेरे पति और मैं दिहाड़ी मजदूर का काम करते हैं। हमारे पास जमीन नहीं है। हमारे परिवार की औसत मासिक आय 750 रुपये से कम है। मैंने अखबार में अपना नाम देखा और मुझे तत्काल हटा दिया गया। मुझे कभी नोटिस दिया ही नहीं गया। हमारे पास तीन बच्चे हैं। परंतु, पहला बच्चा मेरे पति की पहली पत्नी से है। मेरे पास केवल दो बच्चे हैं लेकिन फिर भी मुझे हटा दिया गया। मैं अपील करने के लिए हाईकोर्ट गयी और वकील को देने और आगे के मौके–बेमौके के खर्चों के लिए 35 हजार रुपये का कर्ज लेना पड़ा।"

बहुत से प्रतिभागियों ने, विशेषकर गरीब घरों से आने वाले लोगों ने मुकदमा दायर करने के लिए कर्ज लिया था। इनमें से कुछ लोगों ने अपने परिवार की औसत आमदनी से बेहिसाब मात्रा में बड़ा कर्ज लिया था। आदेश को चुनौती देने के लिए लिया गया कर्ज भविष्य में परिवार के ऊपर काफी बड़ा बोझ साबित होगा। यह केवल उन्हें गरीबी में और गहरे धकेलने का ही काम करेगा।

भाग 5

दो बच्चों की नीति के भारी दुष्परिणाम

महिलाओं और दलितों के राजनीति में भागीदारी के अपने अधिकार का दावा करने से पंचायती राज अधिनियम के पारित होने के एक दशक पश्चात दो बच्चों की नीति जैसी भेदभाव पूर्ण नीति के लागू होने से यह प्रक्रिया बुरी तरह बाधित हुई है। राजनीति में जातिवाद ने दलितो की संतोषजनक भागीदारी में बाधा डालने का काम किया है। अक्सर देखा गया है कि वास्तविक ताकत ऊँची जाति के लोगों के हाथ में रहती है। हालांकि 'कठपुतली पंचायत' (दलित और महिला दोनों पंचायत नेताओं पर लागू) और पंचायत 'पति' (महिला नेताओं के पति) होने की आम समझ इन वर्षों के दौरान हावी रही, पर हमारा अध्ययन दर्शाता है कि इस मानक ने वास्तव में ऊंची जाति के लोगों और दलितों के बीच के, महिलाओं और पुरुषों के बीच के, तथा युवाओं और बुजुर्गों के बीच के मौजूदा विरोधों को मजबूत बनाने का काम किया है।

जहाँ दलित नेता धीरे–धीरे शक्ति हासिल करते जा रहे थे और अगड़ी जातियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए संधर्ष कर रहे थे वहीं इस नीति ने वास्तव में उनकी प्रगति को 'बाधित' किया है। इसने जाति–आधारित राजनीति को एक बार फिर बल प्रदान किया है, जहाँ पर अगड़ी जातियों के लोग दलितों को उनके पद से हटा देने के लिए इस कानून का प्रयोग कर रहे हैं।

महिलायें भी समुदाय के भीतर स्वीकार्यता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती रही हैं, और बहुत से मामलों में जहां मतदाता उसे अपना नेता मानते हुए उसके पक्ष में मतदान करने के लिए तत्पर रहते हैं, वहीं तीसरे बच्चे के आधार पर अयोग्यता जनादेश की तौहीन और जनतांत्रिक भावना का उल्लंघन करती है। इस मानक ने विरोध में खड़ी पितृसत्तात्मक शक्तियों को संवेग प्रदान किया है और उन्हें महिला पदाधिकारियों को 'कानूनी' तरीके से 'बाहर करने' का ठोस कारण मुहैया कराया है।

क. जातिगत राजनीति

दो बच्चों की नीति ने 73वें संशोधन के बुनियादी प्रयोजन का उल्लंघन किया है। यह संशोधन समाज के उपेक्षित तबकों को स्थानीय शासन और निर्णय प्रक्रिया में भाग लने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए लाया गया था। भारत में समुदाय की धारणा अभी भी मुख्यतः जाति, धर्म और लिंग से जुड़ी पहचान द्वारा परिभाषित होती है। इन बातों के आधार पर विभिन्न समुदायों के भीतर लोगों को सत्ता दी जाती है या उनसे ले ली जाती है। इस अर्थ में 73वें संशोधन ने महिलाओं और पिछड़े वर्गों के लिए सीटें आरक्षित करके महत्त्वपूर्ण और भारी बदलाव लाने का प्रयास किया था, इससे राजनीति में उनकी भागीदारी तो संभव हुई ही साथ

ही इस प्रक्रिया के जरिये स्थानीय समुदायों के भीतर लिंग और जाति आधारित शक्ति की असमानताओं के संदर्भ में यथास्थिति में बदलाव भी आया। लेकिन, दो बच्चों की नीति को थोपकर सरकार ने एक ही वार में बड़े स्तर के विधि–निर्माण के सभी सकारात्मक प्रभावों का बहुत हद तक निषेध कर दिया है।

इस विसंगति का हवाला देते हुए होशंगाबाद जिले के अनुसूचित जाति के सरपंच वीएच ने कहा," सरपंच के तौर पर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते समय जिन समस्याओं का मुझे सामना करना पड़ा उनका मुख्य कारण मेरी जातीय पृष्ठभूमि थी। ऊँची जातियों के लोगों को मेरा उच्च पद पर आसीन होना सहन नहीं होता था।'' उसने आगे जोड़ा कि दो बच्चों की नीति ऊँची जाति के लोगों को नीची जाति के लोगों को अपमानित करने के लिए ज्यादा शक्ति प्रदान करेगा। "कानून पहले से ही उपेक्षित समूहों को और भी अधिक हाशिये पर फेंकेंगा क्योंकि अगड़ी जातियों के लोग रिकार्डों के साथ छेड़छाड़ करने और हमारे खिलाफ झूठी शिकायतें दर्ज कराने के लिए पर्याप्त मात्रा में शक्तिशाली हैं।''

अन्य पिछड़ा वर्ग के पुरुष सरपंच आरएस ने कहा, "एक तरफ आप दलितों और अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण लागू करते हैं, वहीं दूसरी तरफ आप उन्हीं लोगों को एक दूसरे कानून से शक्तिहीन बनाकर अपनी पहले वाली स्थिति में वापस लौटने के लिए मजबूर करते हैं।''

उन दूरगामी परिवर्तनों को देखते हुए, जैसा कि संविधान संशोधन के जरिये प्रयास किया गया है, यह तो होना ही है कि उन समुदायों की तरफ से इसका प्रतिरोध किया जाए जिनके हाथ में आज तक सत्ता रहती आई है और स्थानीय शासन में जिनके फैसले चलते रहे हैं। आरक्षण और क्षतिपूर्ति की दूसरी नीतियों के जरिये उपेक्षित समूहों को ऊपर उठाने के सरकार के प्रयास के फलस्वरूप ये समूह अगड़ी जातियों की नफरत का पात्र बने हैं। इसके अलावा, इन शक्तिशाली गुटों द्वारा दो बच्चों की नीति का दुरुपयोग महिलाओं और पिछड़ी जातियों को निर्वाचित पदों पर आसीन होने से रोकने के लिए किया जा रहा है।

एसबी नामक एक दलित सरपंच इस तरह की घृणा का शिकार बनी थी। उसकी भूमिका को 'छाया सरपंच' होने तक सीमित कर दिया गया था, जहां पर सभी मामलों पर सचिव का नियंत्रण था। और उसकी अनिच्छा के बावजूद सचिव जब चाहे उससे दस्तखत करवा लेता था। सरपंच एक नाममात्र की मुखिया से ज्यादा कुछ नहीं थी। एसबी के अनुसार यह वही व्यक्ति था जिसने थोड़ा–बहुत विरोध करना शुरू करने पर उसके खिलाफ शिकायत दर्ज करा दी। अगड़ी जातियों द्वारा उसके पद का दुरुपयोग किये जाने के चलते वह और उसका परिवार भारी दबाव का सामना कर रहा है। ऐसी स्थिति इसलिए बनी कि इन लोगों का अपने ऊपर बहुत वश नहीं रहता।

सेहोर जिले की बी बी नामक दलित सरपंच ने कहा, "गाँव के ऊँची जाति के लोगों ने मेरे खिलाफ एक झूठी शिकायत दर्ज करवाई। मैं ऊँची जाति वालों की बात माने बिना निर्णय लेती थी। वे नहीं चाहते कि हमारे क्षेत्र में कोई विकास कार्य हो। वे चाहते हैं कि हर कोई उनके पीछे चले। यह मुझे मंजूर नहीं था। वे यह आदेश मेरे खिलाफ लेकर आये जबकि उस समय मेरी आखिरी संतान करीब छह वर्ष की थी। मैं अदालत गई और मैंने मुकदमा जीत लिया। मेरे खिलाफ साबित करने के लिए उनके पास कुछ नहीं था।" फिर भी, बी बी अपने भविष्य को लेकर सशंकित है।

ग्राम परिषदों और म्युनिसिपैल्टियों में राजनीतिक पद के लिए उन सीटों के जरिये जो कि उनके लिए संवैधानिक तौर पर ''आरक्षित'' हैं, दावा पेश करने वाले दलितों को हड्डी–पसली एक करने और जान से मार देने की धमकियाँ मिलती रही हैं।[2] जाहिर है कि ग्राम समुदाय से जुड़े मामलों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर अपना नियंत्रण बनाये रखने वाली अगड़ी जातियां उन परिवर्तनों को बर्दाश्त नहीं कर सकतीं जिन्हें कि विकेन्द्रित जनतांत्रिक संस्थाओं द्वारा लाया जा रहा है। अतएव पंचायत प्रणाली के लागू होने के समय से ही बदलाव को रोकने के लिए तनाव, हिंसा और हत्याएँ होती रही हैं। संवैधानिक संशोधनों के जरिये स्थानीय शासन प्रणाली को मजबूती मिलने के समय से ही स्थानीय समुदायों में जातिवाद के हिंसक रूप में प्रकट होने की घटनाओं में तेजी से वृद्धि हुई है। चूँकि पंचायती राज संस्थाओं को अगड़ी जातियों के लोग इस रूप में देखते हैं कि इनकी वजह से निचली जातियों के लोग जनतांत्रिक ताने–बाने में रह रहे लोगों के रूप में अपने अधिकारों पर जोर देने लगे हैं इसलिए वे जाति आधारित भेदभाव और हिंसा के निशाने पर आ गये हैं। स्थानीय स्तर पर यह बढ़ती बेचैनी हर जगह देखी जा सकती है।

बाकायदा निर्वाचित होने के बावजूद दलितों के पास वे अधिकार और वह रुतबा नही होता जिसके कि वे हकदार होते हैं। उन्हें पंचायत कार्यालयों के बाहर जमीन पर बैठाया जाता है जबकि गांव के परंपरा से चले आ रहे बड़े लोग कुर्सियों पर बैठते हैं। एक दलित सरपंच को पटेल के घर के भीतर ही नहीं जाने दिया गया था जहाँ पर कि गांव की बैठक चला करती थी. उसे अपना सिर ढंककर देहरी पर बैठे रहना पड़ा था।

एलबी नामक सिवानी जिले की अनुसूचित जाति की एक महिला पंच ने कहा, "ग्राम सभा की बैठकों में मैं विभिन्न मुद्दों पर अपनी राय देती थी। सरपंच ने मेरे सुझावों को कभी गम्भीरता से नहीं लिया। मुझे योजनाओं के बारे में कोई सूचना नहीं दी जाती थी। मेर इन मुद्दों को उठाने पर सरपंच बहुत नाराज हो जाता। चूंकि मैं गरीब हूँ और जीवनयापन के लिए खदान में काम करती हूँ इसलिए उसने कभी यह माना ही नहीं कि मेरी भी कोई भूमिका है। दो बच्चों की नीति पर सरकार का यह कानून बहुत ही गलत है। किसी ने मेरे विरुद्ध इसका

---

2 ह्यूमन राइट्स वॉच, ''ब्रोकन पीपल'', कस्ट वाइलंस अगेन्सट इण्डिया'ज़ ''अनटचेबल''

प्रयोग किया और मुझे पद से हटवा दिया। सरकार को यह कानून लागू करने से पहले हम जैसे गरीबों के बारे में सोचना चाहिये था। मैं कोर्ट भी नही जा सकती क्योंकि मैं इसका खर्च वहन नहीं कर सकती।"

सत्ता के निर्वाचित पदों पर महिलाओं को अभी भी ज्यादातर स्वीकार नहीं किया जाता। जातिवादी सोच के तत्वों के साथ मिलकर पितृसत्तात्मक शक्तियां अक्सर ही निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के प्रभावी कामकाज में अड़ंगा डालने के लिए हर संभव तरीकों को काम में लाती हैं। जन समुदाय में बड़े पैमाने पर व्याप्त विचार यह था कि महिलाएँ न तो पंचायत के कार्य संभालने के योग्य हैं और न ही उसमें उनकी कोई रुचि ही है। महिलाओं को सक्रिय और बड़बोला नहीं होना चाहिए खासकर ऊँची जाति के पुरुषों की मौजूदगी में। कोई महिला अगर पुरुषों के प्रभुत्व के खिलाफ जाने का प्रयास करती है तो इसका नतीजा यह होता है कि उसकी अधिकार जब्त कर लिये जाते हैं। इस प्रसंग में दो बच्चों की नीति ने केवल पुरुषों के प्रभुत्व को मजबूती प्रदान करने का ही काम किया है।

एमबी के अनुसार, "मुझे लोगों का बहुत समर्थन और सम्मान मिला। मैं कागजों पर हस्ताक्षर करती थी। ग्राम सभा परियाजनाओं पर मुझसे सलाह लेती थी। अब इस कानून के कारण सबकुछ खत्म हो गया है।" टीबी का कहना है, "ऐसे ही महिलाओं को पंचायत का हिस्सा बनने में मुश्किल होती है। फिर सरकार ऐसी नीति बनाती है और उन्हें हटा देती है। जिनके पास दो या तीन लड़कियाँ हैं उनके पास बहुत सी समस्याएं होंगी।" टीबी ने सरपंच के रूप में बहुत मेहनत की थी। उसने सड़कों और स्कूल भवनों का निर्माण करवाया था। उसने गाँव में इन्दिरा आवास योजना की भी शुरुआत की थी और क्षेत्र की कई विकास परियाजनाओं में अपना योगदान दिया था। वह न सिर्फ अपने चुनाव क्षेत्र के लागों का समर्थन और सम्मान हासिल कर पाई बल्कि उसने उत्कृष्ट सरपंच का राष्ट्रपति सम्मान भी प्राप्त किया। "ऐसे सम्मान का क्या फायदा जब आपका सारा कठिन परिश्रम एक झटके में नष्ट हो जाये और आपको एक बच्चा अधिक होने के कारण पद से बर्खास्त कर दिया जाये ?"

लिंग आधारित मौजूदा असमानताओं और उससे उत्पन्न उपेक्षा और प्रतिकूल अवस्था, जिसका कि समाज में महिलाओं को अभी भी सामना करना पड़ता है, को देखते हुए यह बात तय जान पड़ती है कि दो बच्चों की नीति का क्रियान्वयन महिलाओं के ऊपर बहुत ही बुरा असर डालेगा। हालांकि महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटों के आरक्षण के फलस्वरूप महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा अपने पर निर्वाचित हुआ है, लेकिन इसके बाद दो बच्चों की नीति को इसमें शामिल कर लिए जाने के चलते बड़ी संख्या में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को अयोग्य ठहराया गया है। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि कई महिला सरपंचों के पास अपने गाँव के लिए अच्छा काम करने का सपना था। हालांकि बहुत सी महिलाओं के पास विकास कार्यों से जुड़े होने या अपने दायित्वों का निर्वाह करने का कोई पूर्व अनुभव नहीं था, कुछ महिला सरपंचों ने अन्य चीजों के साथ–साथ सड़कों, स्कूल भवनों के निर्माण और रखरखाव और

पेयजल सुविधाओं को बेहतर बनाने जैसे कार्यों को हाथ लगाया। बहुत से मामलों में पद पर चुनी गई महिलाओं ने निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में अपनी भूमिका के अर्थ का उन्नत बोध विकसित किया। इसके साथ ही ऐसी महिला प्रतिनिधियों ने अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों के साथ–साथ उनका निर्वाह करने से मिलने वाली उपाधियों के महत्व को भी बखूबी समझा।

"मैं ऐसी राजनीति में नहीं रहना चाहती और न ही में पंच या कुछ और बनना चाहती हूँ। मैं अपनी घर–गृहस्थी और बच्चों के साथ खुश हूं। मैं ऐसा पद नहीं चाहती जिसके कारण मैं अपनी प्रतिष्ठा, हैसियत खो दूँ और मुश्किलों का सामना करूँ। इससे घर पर भी समस्या उत्पन्न हो जाती है।" – महिला उप सरपंच, 25 वर्ष

"एक तरफ जहाँ सरकार आरक्षण के जरिये महिलाओं को अधिकारसंपन्न बनाने का प्रयास करती है वहीं दूसरी तरफ ऐसी नीति लागू करके वह महिलाओं को उसी स्थिति में ला देती है जहाँ से स्वतन्त्र होने के लिए उन्होंने संघर्ष किया है" – डीपी, रतलाम की एक आदिवासी सरपंच।

"शुरू–शुरू में हमें हर प्रकार का सम्मान मिलता था, पर अब हमें हर तरह के अपमान का सामना करना पड़ रहा है। हम बलि का बकरा बनाया गया है"– आदिवासी पुरुष पंच।

"मुझे जिस दिन से पद से हटाया गया उस दिन से मैं किसी बैठक में शामिल नहीं हुई क्योंकि मुझे किसी भी चीज के बारे में सूचना नहीं दी जाती है और मैं बहुत अपमानित महसूस करती हूँ। मैं गाँव में दूसरे लोगों से मिलना नहीं चाहती।" – जबलपुर की अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंध रखने वाली महिला उप सरपंच।

दो बच्चों की नीति का प्रभाव यह हुआ है कि इसने स्वतंत्र सोच वाली, साहसी और महत्वाकांक्षी महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होने से रोककर उनके उत्साह को नष्ट किया है। जिन लोगों के पास ताकत और पैसा है ऐसे लोगों के हाथ में इसने महिला प्रतिनिधियों के प्रयासों को किनारे लगाने, उनकी आवाज को खामोश करने और अपने जीवन और उत्पीड़न एवं गरीबी की अपनी जैसी ही स्थितियों में रहने वाले लोगों के जीवन में बदलाव लाने के लिए सभी तरह की कठिनाइयों के विरुद्ध जबर्दस्त दृढ़ निश्चय, स्वतंत्रता, साहस और लोच दिखाने वाले लोगों को हतोत्साहित करने के लिए आसान औजार थमा दिया है। अध्ययन से इस बात का पर्याप्त सबूत मिलता है कि शिकायतें उन लोगों द्वारा दर्ज कराई गईं जो कि पद पर आसीन लोगों को हटाकर चालबाजी करके नियंत्रण अपने हाथ में लेना चाहते थे। समाज में जाति के आधार पर बना ऊंच–नीच का ढाँचा उसके सुविधा संपन्न तबकों और दबे–कुचले एवं अधीनता का जीवन बिताने वाले तबकों के बीच मानवीय संबन्धों की नीति निर्धारित करता है। गांवों के स्तर पर राजनीति के बंटते जाने के साथ दो बच्चों की नीति जाति से जुड़े बंटवारों को आगे और अधिक तेज कर रहा है।

ख. पितृसत्तात्मक समाजीकरण और महिलाओं की भूमिका

समाज में महिलाओं की पहचान से उनकी सामाजिक स्थिति के बारे में पता लगाया जा सकता है। व्यक्ति के तौर पर महिला की पहचान मिट जाती है और उसकी पहचान पुरुष के साथ उसके रिश्ते के आधार पर की जाने लगती है फिर चाहे वह पुरुष पिता हो, भाई हो या पति।

महिलाओं को 'बेटी, बहू, पत्नी, भाभी...' के रूप में संबोधित किये जाने से होता यह है कि इन भूमिकाओं को अपनाने की प्रक्रिया में महिलाएं अक्सर अपनी पहचान खो देती हैं। जहाँ संविधान संशोधन ने महिलाओं के लिए राजनीति में जगह बनाई और सार्वजनिक जीवन में उनके प्रवेश के लिए वैध तरीके मुहैया कराये और यह सुनिश्चित किया कि मुखर किस्म की महिलाएं निर्वाचित पदों पर विराजमान हों वहीं दो बच्चों की नीति पितृसत्तात्मक शक्तियों के लिए महिलाओं को शक्तिहीन बनाना आसान कर देता है। हालांकि गांवों के प्रशासनिक ढांचे में पदभार ग्रहण करने के लिए सरकारी रिकार्डों में महिलाओं के नाम का इस्तेमाल किया जाता था लेकिन अक्सर ही उनकी भूमिका घर के ''पुरुषों'' द्वारा निभाई जाने लगती थी। हालांकि एमबी सरपंच थी तो भी एक व्यक्ति के रूप में कभी भी उसको नाम लेकर नहीं बुलाया जाता था। उसे सिर्फ परिवार के मुखिया से उसके रिश्ते के रूप में ही संबोधित किया जाता था। इसके अलावा किसी महिला को उसके नाम से बुलाने को उसकी बेइज्जती करना भी माना जा सकता है क्योंकि पारंपरिक संस्कृति में इज्जतदार महिलाओं को उनके नाम से नहीं बुलाया जाता। एमबी को हमेशा एसपी की बहू कहकर बुलाया जाता था। जब हमने उसके पति से पूछा कि कोई भी उसका नाम क्यों नहीं जानता तो उसने जवाब में कहा, "वह एक अनपढ़ औरत है उसका नाम जानकर आप क्या करेंगे?"

अक्सर लोग पति को सरपंच के रूप में जानते थे जबकि यह उसकी पत्नी थी जो कि चुनाव लड़कर सरपंच बनी थी। पन्ना जिले के एक गाँव में लगभग सभी लोग एचबी के पति को सरपंच के रूप में देखते थे न कि एचबी को जो कि वास्तविक सरपंच थी। एचबी ने बताया, "मुझे जरूरतों को पूरा करने और उन्हें जायज ठहराने के लिए सरपंच बनाया गया था। गाँव में कोई नहीं जानता कि मैं सरपंच हूँ। मेरे पास कभी कोई अधिकार रहा ही नहीं।"

रतलाम जिले की एक महिला पंच ने जवाब दिया, "मुझे कुछ नहीं पता, मेरे पति से पूछिये।" दुर्भाग्यवश हमें कुछ इसी प्रकार का जवाब बार–बार मिलता रहा। ज्यादातर मामलों में महिला सरपंच ने छाया सरपंच के रूप में काम किया था या सहायक की भूमिका निभाई थी जबकि सत्ता की बागडोर पति के हाथों में थी। फरवरी 2000 में सरपंच के रूप में चुनी गयी एसबी, सिवनी ने बताया कि उसका पति ही उसकी ओर से सरपंच के सारे दायित्वों का निर्वाह करता था। उसने उसे कभी भी न तो कोई फैसला करने दिया और न ही वह उसे कुछ बताने की जरूरत समझता था।

सदियों से चली आती परंपरा के अनुसार पुरुषों और महिलाओं की सार्वजनिक और निजी जीवन में जिम्मेदारियां बंटी हुई हैं। अतएव, जब महिलाएँ परंपरा से चले आते अपने निजी जीवन की सीमाओं को लांघकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करती हैं और वहां पर नेतृत्वकारी भूमिका पर काबिज हो जाती हैं तो उनके प्रति विरोध के भाव रखे जाने लगते हैं। विदिशा जिले की एसबी ने बताया कि उसके परिवार वाले और पति यह कहकर हमेशा उसे ताना मारा करते थे, "या तो बच्चा पैदा करो नहीं तो सरपंच बनके सरपंची करो।"

> *"हम लोगों को पतियों का बहुत अधिक सहयोग तब तक मिलता जब तक कि इससे उनका रुतबा न बढ़ता हो। मुझे हटाये जाने पर मेरे पति बहुत रुखाई से पेश आये थे।"*
> *– आदिवासी महिला सरपंच*

शिवपुरी जिले की केबी ने बताया, "मैं पांचवीं तक पढ़ी हूं। मैं पंच बनकर बहुत खुश थी। गाँव वाले मुझे "सदस्य" कहते थे और मेरा सम्मान करते थे। लेकिन मेरा पति इससे खुश नहीं था। पद से हटाये जाने पर मैंने पंच के रूप में मिला सारा सम्मान और प्रतिष्ठा खो दी। इससे मुझे भयंकर दुख हुआ। मेरे पति ने कभी भी मेरा साथ नहीं दिया था। लेकिन उस वक्त उन्हें बहुत गुस्सा आया जब मैं अपना पद और उससे जुड़े रुतबे को गंवा बैठी। उसने कहा, "मैंने तुम्हें राजनीति में जाने से मना किया था लेकिन तुमने कभी भी मेरी बात नहीं मानी। तुम्हें अधिकार चाहिए था अब परिणाम भुगतो।"

अन्य पिछड़ा वर्ग की उपसरपंच पीबी को अपने पति से कभी कोई सहयोग नहीं मिला। उसका कहना था, "अगर हमें पुरुषों से थोड़ा बहुत समर्थन मिला होता तो हम दिखा सकती थीं कि साथ मिलकर हम महिलाएं क्या कर सकती हैं।'' पितृसत्तात्मक सामाजीकरण ने दो बच्चों की नीति के सन्दर्भ में महिलाओं की स्थिति को और अधिक खतरे में डाल दिया है। ऐसे समाज में जहाँ पर परिवार और समुदाय के सम्मान को बनाये रखना प्रायः महिलाओं की जिम्मेदारी समझी जाती है, उसकी अयोग्यता से घर में उसके खिलाफ हिंसा की संभावना जन्म लेती है। यह बात खासकर उन स्थितियों में लागू होंती है जहां पर पंचायती राज संस्था का हिस्सा बनने का फैसला महिला द्वारा स्वतंत्र रूप से लिया गया होता है और वह भी पति या परिवार के अन्य सदस्यों की राय लिये बगैर।

फिर भी कुछ मामलों में पतियों ने सहयोगी की भूमिका निभाई थी, जिसने महिला प्रतिनिधियों को ज्यादा प्रभावी बनने में सक्षम बनाया था। टी और उसका पति मिलकर पंचायत का काम देखते थे। टी ने इस बात को स्वीकार किया कि उसके पति ने उसकी जानकारी के बिना कोई फैसला नहीं लिया, जबकि वह स्वयं भी काफी विचार–विमर्श के बाद ही निर्णय लेती थी। केबी के मामले में उसके ससुर ने उसे पुरजोर सहयोग प्रदान किया। कुछ महिलाएं अपने कामों का निपटारा स्वयं ही करती थीं और कुछ अपने पतियों और गाँव के अन्य लोगों की मदद लेती थीं।

HP-125
12777

मजे की बात है कि पांच महिला सरपंचों के परिवार के पुरुष सदस्य भी उपसरपंच के रूप में पंचायत में थे। इससे उन्हें न केवल सरपंच से जुड़े मामलों की जिम्मेदारी उठाने के लिए औपचारिक मंजूरी मिल गई बल्कि इससे पंचायत पर उनका नियंत्रण भी बढ़ गया। हमारी एक परिचर्चा में बहुत से लोगों ने कहा कि महिला प्रतिनिधि अपने काम को लेकर प्रायः संजीदा और पुरुषों की तुलना में ज्यादा ईमानदार और कम भ्रष्ट थीं।

ठीक उसी प्रकार से जैसे कि विभिन्न समुदायों के भीतर जाति आधारित यथास्थिति पर संविधान संशोधन के फलस्वरूप असर पड़ा है, लिंग आधारित यथास्थिति भी अब कायम नहीं है। लिहाजा इस बात की आशा की जा रही थी कि जब महिलाएं पारंपरिक तौर पर चले आ रहे अपने निजी जीवन से परे जाकर सार्वजनिक जीवन में नेतृत्वकारी भूमिका ग्रहण करेंगी तो उन्हें परिवार (जहां पर उन्होंने चुनाव लड़ने का स्वतंत्र फैसला किया था) के साथ–साथ समुदाय के भीतर भी शत्रुवत माहौल का सामना करना पड़ेगा।

स. धर्म की भूमिका

इस अध्ययन का एक रोचक परिणाम यह निकला कि मुस्लिम आबादी को लेकर बहुसंख्यक समुदाय के बोध के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। यहां पर इस बात का उल्लेख किया ही जाना चाहिए कि साक्षात्कार की योजना का कोई धार्मिक आयाम नहीं था और न ही फील्ड में गयी टीम ने इसके संबंध में कोई सवाल ही पूछा। फिर भी जवाब देने वालों के साथ बातचीत करते समय निम्नलिखित टिप्पणियों में से कुछ को दर्ज कर लिया गया। मुस्लिम आबादी के बारे में दलितों और आदिवासियों की टिप्पणियों को सुनकर आश्चर्य हुआ।

बहुत से प्रतिभागियों ने यह राय जाहिर की कि चूंकि यह कानून केवल हिंदुओं के ऊपर थोपा गया है इसलिए यह अनुचित है। इस धारणा की जड़ यह विश्वास है कि इस कानून के आधार पर सिर्फ हिन्दुओं को अयोग्य ठहराया जा रहा है मुसलमानों को नहीं। ऐसा जान पड़ता था कि हरेक के दिमाग में यह बात थी कि "इस कानून को मुसलमानों के ऊपर लागू किया जाना चाहिए क्योंकि वे ऐसे लोग होते हैं जिनके पास बहुत सी पत्नियां और बच्चे होते हैं और एक दिन वे हिंदुओं के ऊपर शासन करेंगे। केवल उनकी वजह से हम (हिंदू) इस कानून के शिकार बने हैं।" जवाब देने वाला एक व्यक्ति यह कहने की हद तक आगे बढ़ गया कि "हमारी सरकार मुसलमानों को कुछ नहीं कहती और वे बच्चों का ढेर लगा देते हैं।" जवाब देने वाले लोगों के मन में उनके साथ अन्याय किये जाने का आभास और यह बात थी कि मुसलमानों को छूट दी जा रही है और इस बात को वे अंदर से मानते थे।

एक समुदाय विशेष के खिलाफ लोगों की यह सोच इस भय और आशंका से उपजी है कि 'उसके' लोग उन पर भारी पड़ेंगे। जहां 'हिंदू' राष्ट्र के रूप में प्रभुता प्राप्त करने की भूख विभाजन की बढ़ती अनुभूति के पीछे की दिशा–निर्देशक शक्ति जान पड़ती है वहीं यह जमीनी

स्तर पर यानी स्थानीय नेताओं के बीच लगातार जोर पकड़ती जा रही है। जहाँ दो बच्चों की नीति के लागू होने से सामान्यतया पहले से ही लोगों के बीच समस्यायें पैदा हो रही हैं वहीं मुसलमानों के इस विश्वास ने जोर पकड़ा है कि यह उन्हें देश से निकाल बाहर करने के लिए रची जा रही साजिश है। उन राजनीतिक दलों द्वारा भी इस विश्वास का प्रचार किया जा रहा है जो कि लोगों के असुरक्षा बोध और देश में हिंदुओं के मुकाबले मुस्लिम आबादी के ज्यादा हो जाने के मिथक को भुनाते हैं।

जनसंख्या एवं लिंग अनुपात पर हाल की जनगणना के आंकड़े जनसंख्यात्मक पैटर्नों के निर्धारक कारकों पर तटस्थ दृष्टि से विचार करने का अवसर प्रदान करते हैं। दुभार्ग्यवश इस अवसर को एक संकीर्ण राजनीतिक मंच ने झटक लिया है, जो कि अपने स्वयं के सांप्रदायिक उद्देश्यों के लिए धर्म आधारित आंकड़ों को तोड़–मरोड़कर इस्तेमाल करना चाहता है। यह मंच दावा करता है कि भारत में मुसलमानों की तेजी से बढ़ती आबादी हिंदुओं को काफी पीछे छोड़ देगी। चिंता की बात यह है कि सांप्रदायिक/धार्मिक शब्दावली में जनसंख्या के मुद्दे की की व्याख्या करने का यह प्रयास अल्पसंख्यकों के बारे में पहले से ही पूर्वाग्रह भरे और अधिकतर गलत जानकारी रखने वाले जनमत को और बल प्रदान करेगा और मुस्लिमों पर हमला करने के लिए घिसी–पिटी कहानियों को सुदृढ़ करेगा।

जनसंख्या के आंकड़ों ने धार्मिक श्रेणियों के लिए दोतरफा वर्गीकरण की काफी उपयोगी जानकारी उपलब्ध करायी है। उदाहरण के लिए आंकड़ों से पता चलता है कि मुस्लिमों के बीच 59.1 प्रतिशत की साक्षरता दर 64.8 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से बहुत पीछे है और दूसरे सभी सूचीबद्ध समुदायों की साक्षरता दर से नीचे है। मुसलमानों के बीच कार्य भागीदारी दर 39.1 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से पुनः बहुत नीचे सिर्फ 31.3 प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में देश के औसत नागरिक की तुलना में भारत के मुसलमान के काम पर लगे होने की आशा 25 प्रतिशत कम होती है। अगर हम कार्य में भागीदारी के लिए अलग–अलग आंकड़ों पर नजर दौड़ाएं तो तस्वीर और भी निराशाजनक नजर आयेगी। 31.7 प्रतिशत के समग्र औसत की तुलना में केवल 20.7 प्रतिशत मुस्लिम ही किसान के रूप में सूचीबद्ध हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत के औसत नागरिक की तुलना में किसी मुस्लिम के अपने मालिकाने वाली जमीन पर खेती करने की संभावना 50 प्रतिशत कम होती है। इसके उलट 8.1 प्रतिशत मुसलमान – 4.2 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत का लगभग दुगुना – घरेलू उद्योगों में कहने का मतलब है खराब, कम मजदूरी वाली हाड़तोड़ काम की परिस्थितियों में काम करते हैं।

संदर्भ : अमित सेन गुप्ता 'लेमंटेशंस आन दि बिलियंथ बेबी'

परंतु मुस्लिम समुदाय के कुछ अयोग्य प्रतिनिधियों का दो बच्चों की नीति के संबंध में अलग नजरिया था। हरदा जिले के एसके के अनुसार, "हमारे कुरान में बच्चों की संख्या पर रोक लगाना

पैगंबर के उपदेशों के खिलाफ है। अगर हम यह काम करते हैं तो हम पर खुदा का कहर टूटेगा।" एके ने भी कुछ इसी तरह की भावनाएं व्यक्त कीं, "अपने धर्म में हम बच्चों की संख्या पर रोक नहीं लगा सकते। हमें परंपरा का पालन करना ही होगा।" फिर भी, एके अपने दो बच्चों को गोद दे चुके हैं। इस्लाम को आमतौर पर एक ऐसे धर्म के रूप में चित्रित किया जाता है जो कि संतति निरोध या गर्भपात की मनाही करता है। परंतु संतति निरोध और गर्भपात पर इस्लाम की अवस्थिति इस्लामिक न्यायशास्त्र के विविध संप्रदायों की व्याख्या पर निर्भर करती है।

हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही समुदायों की महिलाओं को विवाह करके बच्चे पैदा करने पर आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, इससे सामाजिक ढ़ांचे में वे अपनी स्थिति को और बेहतर बना लेती हैं। चूँकि उन्हें प्रतिष्ठा मातृत्व से मिलती है अतः दूसरी पत्नी के लिए तलाक दिये जाने या छोड़े जाने पर भी बच्चे तलाक के खतरे के खिलाफ एक प्रकार से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का काम करते हैं। लिहाजा, महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे जब तक गर्भधारण की उम्र को पार नहीं कर जातीं तब तक बच्चे पैदा करने का काम करती ही रहेंगी, फिर ऐसा करते रहने की उनकी इच्छा हो या न हो। इसके अलावा, जहां पर शिशु मृत्यु दर अधिक होती है वहां परिवारों का झुकाव अधिक बच्चे पैदा करने की ओर होता है। इस प्रकार शिशु मृत्यु की उच्चतम दर वाले सामाजिक रूप से अल्पसुविधा प्राप्त लोगों के परिवार बड़े होते हैं फिर वे चाहे जिस भी धर्म के हों।

(द) मर्दानगी और जननक्षमता

अगड़ी जाति के सरपंचों में से एक ने कहा, "सरकार कहती है कि हम और बच्चे ना पैदा करें, और वो हमें अपने पद से हटा रहे हैं। हम थोड़ी ना बांझ हैं कि बच्चे पैदा न करें।"

यह समझ कि बच्चों का होना सेक्सुअल दमखम का सबूत है, कुल मिलाकर सिर्फ समाज की विचारधारात्मक नींव को ही मजबूत बनाने का काम करती है। किसी व्यक्ति की मर्दानगी, पुंसत्व और जनन क्षमता को अक्सर उसके द्वारा पैदा किये गये बच्चों की संख्या से मापा जाता है। जितनी ज्यादा संख्या में कोई बच्चे पैदा करता है वह उतना ही अधिक दमखम वाला मर्द माना जाता है और ऐसा करके वह अपनी मर्दानगी तथा पुसंत्व को सिद्ध कर देता है। नंपुसकता को चूंकि कलंक माना जाता है और इसके फलस्वरूप समाज में प्रतिष्ठा और मान–सम्मान चला जाता इसलिए यह एक दृढ़ विश्वास है कि बच्चे नहीं होने पर व्यक्ति को सामाजिक संरचना से बाहर हो जाना पड़ता है।

अतः नपुंसकता या पुंसत्वहीनता मर्द के अहं पर चोट के समान है। इससे समाज में पुरुषों और महिलाओं की जननक्षमता के बारे में समझ के अंतर को आगे और साबित करने में भीं मदद मिलती है–जहां महिलाओं में बांझपन को मातृत्व से जोड़कर देखा जाता है, वहीं पुरुषों में नपुंसकता को मर्दानगी के खात्मे से जोड़कर देखा जाता है।

अन्य अवलोकन

(क) बड़े परिवार का राजनीतिक अर्थशास्त्र

"बच्चे हमारी ताकत हैं। वो हमारे बुढ़ापे का सहारा हैं।"

रायसेन जिले के बीएस कहते हैं कि "मेरी सन्तान तो मेरा उम्रभर साथ देगा, सरपंच पद थोड़े ही देगा"

"बच्चे ही हमारे साधन हैं। चाहे खेत के काम में हो या मजदूरी में ...जितना हाथ ...उतना फायदा"

बड़ा परिवार होने का औचित्य इस तथ्य पर आधारित है कि हरेक सदस्य अपनी व्यवस्था स्वयं कर सकता है। ऐसे परिवारों में अक्सर ज्यादा बच्चे होने और उनके द्वारा परिवार के लिए अतिरिक्त खाना या पैसा लाये जाने पर अस्तित्व टिका होता है। गांवों में 9 या 10 साल का लड़का रोजी कमाकर अपने परिवार को फायदा पहुंचा सकता है। बच्चे जानवर चराने, पानी लाने, जलावन और गोबर इकट्ठा करने, धान की रोपाई करने, खेतों की निराई करने और खेतों के कटाई के बाद बचे ठूंठ काटने और बहुत से दूसरे काम करते हैं। ऐसे हरेक परिवार के लिए काम करने वालों की संख्या को निर्धारित करती है, जिन पर परिवार मदद के लिए निर्भर हो सकता है। अगर परिवार के पास जमीन थोड़ी सी है या बिल्कुल भी नहीं है तो उसकी आमदनी हो सकता है कि ऐसे बच्चों की संख्या पर निर्भर करती हो जिन्हें मजदूरों के तौर पर काम पर लगाया जा सकता है। ग्रामीण आबादी के अच्छे–खासे हिस्से में प्रचलित छोटी जोतों की खेती इतनी लाभप्रद नहीं होती कि मजदूर लगाये जा सकें या मशीन की सहायता ली जा सके।

यही कारण है कि घर पर ही कई काम करने वाले होने से मजदूरों पर कम पैसे खर्च करने पड़ते हैं। यह घर के अन्दर और बाहर श्रम विभाजन की ओर ले जाता है। वहां पर जहां दो वक्त की जरूरत को पूरी करने के लिए दिहाड़ी ही सहारा होती है, बड़े परिवार का मतलब निश्चित रूप से काम करने और कमाने के लिए ज्यादा हाथों का होना होता है। कम से कम जहां तक खाद्य पदार्थों जैसी बुनियादी जरूरतों का संबंध है इससे एक अर्थ में सुरक्षा मिलती है। अपने अध्ययन में हमने पाया कि हाशिये पर पड़े समुदायों के 55 प्रतिशत लोग दिहाड़ी मजदूर थे, जिनमें से लगभग 64 प्रतिशत दलित और कमोबेश 50 प्रतिशत महिलाएं थीं। लगभग 40 प्रतिशत अपने खुद के खेतों परं काम कर रहे थे, जिनमें से लगभग 35 प्रतिशत के पास दो एकड़ से कम जमीन थी। इसके अलावा, उत्तर देने वाले 46 प्रतिशत लोगों की गृहस्थी की औसत मासिक आय 750 रुपये से कम थी। ऐसे में यह स्वाभाविक ही है ऐसे परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक हो।

सामाजिक सुरक्षा नहीं होने से गरीबों का विश्वास है कि बच्चे खासतौर पर लड़के गरीब परिवारों के लिए अस्तित्व बनाये रखने में मददगार होते हैं क्योंकि वे वर्तमान में आर्थिक लाभ प्रदान करते हैं और बुढ़ापे का सहारा होते हैं। लिहाजा, लोगों की बुनियादी आर्थिक जरूरतों को पूरा किये बिना संतति निरोध पर कानून लागू करने से कुछ होने–जाने वाला नहीं।

(ख) बच्चों का जीवित रहना – ऊंची शिशु मृत्यु दर – बड़े परिवार

एल के अनुसार, "अगर दो बच्चों में से एक मर जाये तो सरकार हमारे लिए क्या करेगी?"

एमबी को हटाये जाने के चार महीने बाद उसका तीसरा बच्चा मर गया। बच्चा तीन महीने का था। एक और अयोग्य घोषित सरपंच एलबी का भी तीसरा बच्चा जन्म लेते ही ही मर गया। एमपी को चार बच्चे होने की वजह से अयोग्य घोषित किया गया था। लेकिन उसे हटाये जाने के बाद उनमें से तीन मर गये। यह सिर्फ अकेले एमपी के साथ ही नहीं हुआ, कई अयोग्य सदस्य, उन्हें पद से हटाये जाने के बाद अपना तीसरा बच्चा या और बच्चों को गंवा बैठे थे। अपना तीसरा बच्चा गंवा देने वाली एमबी ने कहा कि वह अपने बच्चे को नहीं बचा सकी क्योंकि स्वास्थ्य सुविधाएं काफी दूर थीं और वह अपने बच्चे को प्राइवेट क्लीनिक में दिखाने का खर्च नहीं उठा सकती थी। उसकी बेटी श्वासनली में भयंकर संक्रमण से मर गयी थी। पन्ना जिले की एमजी ने बताया कि मृत्यु और अस्वस्थता का मुख्य कारण बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। उसने जोड़ा, "सरकार को सरपंचों को हटाने की बजाय स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर बनाने पर ज्यादा ध्यान चाहिए।" देश भर से मिले साक्ष्यों से पता चलता है कि खासकर गरीबों और हाशिये पर पड़े समुदायों एवं महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच बहुत तेजी के साथ कम हुई है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सुविधाओं पर आने वाला खर्च बहुत तेजी से बढ़ा है। अतः यह कोई हैरानी की बात नहीं चिकित्सा खर्च ऋणग्रस्तता के एक प्रमुख कारण के रूप में सामने आ रहा है।

हमारा अध्ययन दिखाता है कि कुल सैम्पलों में से लगभग 35 परिवारों ने अपना एक बच्चा खोया है। कुछ परिवारों में तो तीन बच्चे तक मर चुके हैं। लेकिन, शिशु मृत्यु दर आदिवासी परिवारों में सर्वाधिक (80 प्रतिशत) है इसके बाद दलितों (50 प्रतिशत) और अन्य पिछड़ा वर्ग (40 प्रतिशत) के परिवारों का नंबर आता है।

शिशु और बाल मृत्यु की ऊंची दर उच्च जन्म दर के सबसे महत्वपूर्ण कारणों में से एक है। मध्य प्रदेश में नवजात मृत्यु दर 54.9 और शिशु मृत्यु दर 86.1 है।[3] राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य

---

3 मध्य प्रदेश मानव विकास सूचकांक

सर्वेक्षण के अनुसार प्रति 1000 पर 88 की शिशु मृत्यु दर 68 के राष्ट्रीय औसत के मुकाबले बहुत अधिक है। प्रति 1000 पर 56.4 की बाल मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत से लगभग दोगुनी है।

12 जिलों की शिशु मृत्यु दर

जिले का नाम	शिशु मृत्यु दर
1. शिवपुरी	150
2. पन्ना	185
3. रतलाम	143
4. विदिशा	144
5. सिहोर	146
6. रायसेन	135
7. बैतूल	158
8. होशंगाबाद	163
9. जबलपुर	129
10. सिवनी	115
11. कटनी	जबलपुर में शामिल
12. हरदा	होशंगाबाद में शामिल

स्रोत : मध्यप्रदेश मानव विकास सूचकांक
(दी गयी संख्याएं प्रति 1000 जीवित संततियों पर मृत्यु की संख्या बताती है)

परिवार का आकार और उसकी संरचना उसकी सामाजिक–आर्थिक दशाओं से सीधे प्रभावित होती है। शिशुओं की ऊंची मृत्यु दर और कम संख्या में बच्चों के जीवित बच पाने के कारण गरीब परिवारों के पुरुषों और महिलाओं में जनन क्षमता दर के ऊंची होने की संभावना होती है। यह बात अनेक अध्ययनों से जाहिर होती है, जिनमें आदिवासी परिवारों में शिशु/बाल मृत्यु दर अधिक पायी गयी।

भारत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के स्वास्थ्य सूचकांकों में शिशु और बाल मृत्युदर सबसे अधिक है और उनका प्रदर्शन लगभग सभी प्रजनन संबंधी और बाल स्वास्थ्य

सूचकांकों से सबसे खराब है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आँकड़ों (1998–99) के अनुसार वर्ष 1998–99 के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों में शिशु मृत्यु दर क्रमशः 83, 84 और 76 थी जबकि सामान्य वर्ग में यह 62 थी। प्रसवपूर्व जांच और टीकाकरण, सांस्थानिक या सहायता प्राप्त प्रसव और प्रसव बाद की जांच कराने वाली अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महिलाओं का प्रतिशत सारे समुदायों और धर्मों में सबसे कम है। महिलाओं और बच्चों में गंभीर और हल्के दोनों तरह का एनीमिया (रक्ताल्पता) की दर बहुत अधिक है (अनुसूचित जातियों में 65 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों में 56 प्रतिशत जबकि सामान्य श्रेणी में यह 47.6 प्रतिशत है)। इसके अतिरिक्त कोई हैरानी की बात नहीं है कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के ज्यादा बच्चे टीकाकरण से वंचित रह जाते हैं और कुपोषित होते हैं। उच्च शिशु मृत्यु दर और खराब प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य सुविधाओं के इन एक–दूसरे को बढ़ाने वाले कारणों के चलते अनुसूचित जातियों/जनजातियों के बीच कुल प्रजनन दरें औरों से ऊँची हैं जिसका कारण समझा जा सकता है। इससे लोगों की खराब सामाजिक–आर्थिक स्थिति का पता चलता है लेकिन विडंबना यह है कि राज्य अपनी असफलता स्वीकार करने की बजाय उन्हीं लोगों को दंडित कर रहा है।

हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रजनन संबंधी चयन, खासकर महिलाओं के चयन का फैसला उनके परिवारों द्वारा किया जाता है। वे शायद ही कभी यह तय कर पाती हैं कि उनके कितने बच्चे हों और कब हों। इस तरह, संसाधनों तक पहुंच की कमी और और खराब स्वास्थ्य सेवाएं मिलकर महिलाओं को, खासकर दलित और आदिवासी समुदायों की महिलाओं को बार–बार गर्भधारण तथा गर्भपात से स्वास्थ्य पर होने वाले घातक असर और मृत्यु का अधिक शिकार बनाती हैं। ऐसे देश में, जहां परिवारों को ज्यादा बच्चे इसलिए पैदा करने पड़ते हैं ताकि कुछ जीवित रह सकें, दो बच्चों की नीति विकास प्रक्रिया के लिए हानिकारक ही साबित होगा।

अध्याय 4

मीडिया और न्यायपालिका की भूमिका

दो बच्चों की नीति के इर्द–गिर्द बहस जारी रखने में मीडिया की भूमिका बेजोड़ रही है। मीडिया समूहों और अखबारों ने इस मुद्दे को कवर करने में लगभग कोई कसर उठा नहीं रखी है। जहाँ दि हिन्दू, हिन्दुस्तान टाइम्स, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया, दि इण्डियन एक्सप्रेस, डेकन हेराल्ड, सेन्ट्रल क्रोनिकल, दि टेलीग्राफ आदि राष्ट्रीय दैनिकों ने इस मुद्दे को नीति की दिशा और इसके प्रभावों, सरकार की प्रतिक्रिया और गैरसरकारी संगठनों के दृष्टिकोण से उठाया, वहीं स्थानीय दैनिकों खासतौर पर हिन्दी दैनिकों जैसे दैनिक भास्कर, नवभारत टाइम्स, देशबन्धु, जनसत्ता, दैनिक जागरण, सहारा समय और राजधानी जैसे कुछ अखबारों ने मुद्दे को इस नीति से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले लोगों के नजरिये से कवर किया। साप्ताहिकों, पत्रिकाओं (जैसे फ्रंटलाइन और ग्रासरूट) और विभिन्न प्रकाशनों के सम्पादकियों द्वारा भी दो बच्चों के मानक पर बहस के विभिन्न पहलुओं और मुद्दों को सामने लाया गया। कुछ पत्रों ने जहाँ सरकार के रुख को 'बुद्धिहीनता का स्वर'[1] करार दिया वहीं कुछ सम्पादकीयों, जैसे 'जनसंख्या वृद्धि के पक्ष में' (नवभारत टाइम्स, 21 जून, 2004) ने जनसंख्या वृद्धि के बारे में सकारात्मक दृष्टि से अपनी बात कही है।

जहाँ 'परिवार नियोजन का साधन बना पंचायत' और 'तीसरी सन्तान की छूट' (जनसत्ता, 20 जून, 2004) जैसे कुछ लेख स्थानीय ग्रामीण जनसंख्या की बुरी स्थिति को सामने लाते हैं, वहीं कई अन्य लेख यह उद्घाटित करते हैं कि अपने तीसरे (या सबसे छोटे) बच्चे को जन्म देने वाले या दे चुके बहुत सारे लोगों को ऐसे किसी नीति के अस्तित्व में होने की जानकारी तक नहीं थी।

दूसरी ओर बच्चों को दोषी ठहराते हुए शीर्षक जैसे 'सन्तान ने छीनी माता–पिता की सरपंची' (दैनिक जागरण, 4 अप्रैल, 2004), 'तीसरे बच्चे ने छीनी कुर्सी' (दैनिक भास्कर, 24 फरवरी, 2004) या राजनीतिक खेल को दर्शाते हुए अन्य लेखों जैसे 'पद की खातिर सरपंच ने रचा प्रपंच' (नई दुनिया, 23 मार्च) आदि इस मुद्दे को एकदम दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से सनसनीखेज बना देते हैं। तथ्य यही है कि तीसरे बच्चे के जन्म और यह नीति आरोपित कर दिये जाने के कारण कई लोग पंचायती राज संस्थाओं के लिए अयोग्य घोषित कर दिए गए हैं। कई पंचों और सरपंचों को यह कहते सुना गया है कि यह न तो उनकी गलती है और न ही बच्चे की, अतः उन पर लगी रोक को खत्म और निष्प्रभावी कर दिया जाना चाहिए। कई अखबारों की रिपार्टों में इन लोगों के मन में भरे क्षोभ और असन्तोष को उजागर किया गया है।

---

1 राव, मोहन (2002) 'ए वॉयस ऑफ सेनिटी', फ्रंटलाइन, सितम्बर 27 पृष्ठ 46–47

इस नीति के लागू होने के बाद से मीडिया ने कुछ अन्यायपूर्ण घटनाओं को भी उजागर किया था। मादा भ्रूणहत्या में वृद्धि, 'जन्म से पहले भेदभाव की शिकार' (नई दुनिया, 2001) बच्चों को किसी को गोद दे देना, जीवनसाथी को छोड़ देना या तलाक के लिए अर्जी दे देना आदि। पंचायत में अपने पद को बचाये रखने के लिए 'सरपंच का पद बचाने के लिए तलाक की तैयारी' (नवभारत टाइम्स, 6 अप्रैल, 2002) जैसी घटनाएं तो चन्द एक उदाहरण हैं।

'पापुलेशन पालिसी शुड बी रिप्लेस्ड बाई पालिसी ऑन डेवलेपमेंट' (दि हिन्दू, 12 जुलाई, 2004), 'पापुलेशन शुड हैव वेलफेयर ओरियन्टेड अप्रोच' (सेन्ट्रल क्रोनिकल, 12 जुलाई, 2004) और 'जनसंख्या नीति समाज हित में नहीं' (देशबन्धु, 12 जुलाई, 2004) जैसे नीति विषयक लेखों में वर्तमान नीति की खुले तौर पर आलोचना की गयी है। अन्य पहलुओं जैसे कि परिवार नियोजन में पुरुषों की गैर–भागीदारी को भी 'जनसंख्या नियंत्रण में पुरुषों की महत्त्वपूर्ण भूमिका' (देशबन्धु, 21 अप्रैल, 2004) जैसे लेखों में रेखांकित किया गया है।

मीडिया ने ऐसे लोगों के समाचारों को भी काफी ज्यादा जगह दी जिन पर दो बच्चों की नीति की गाज गिरी थी। इसने प्रतिदिन पंचायती राज संस्थाओं से बड़ी संख्या में निकाले गये सदस्यों की खबरें दीं – 'उपसरपंच सहित ग्यारह पंच हटाये', (नवभारत टाइम्स, 23 मार्च, 2004) '64 पंच–सरपंचों को नोटिस' (दैनिक भास्कर, 29 अप्रैल, 2004)। हालाँकि मुद्दा जनता की नजरों में आ गया था लेकिन सरकार द्वारा कार्रवाई करने में देर होती दिखाई पड़ी। एक तरफ जहाँ प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने 'नो कोएर्सिव पापुलेशन पालिसी' (दि हिन्दू, 21 दिसम्बर, 2004) का वायदा किया, वहीं विपक्ष के नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी इस नीति का पूर्ण समर्थन करते दिखाई पड़े, 'आडवाणी फॉर एनफोर्समेंट ऑफ टू–चाईल्ड नॉर्म', (दि हिन्दू, 19 मार्च, 2004)।

मीडिया ने इस नीति से जुड़े विभिन्न पहलुओं को सामने लाकर चौथे खम्भे के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। लेकिन मीडिया का योगदान तभी पूरी तरह सार्थक होगा जब इस नीति को थोपे जाने से रोकने के बारे में कुछ ठोस कार्रवाई हो और इससे लोगों की जिन्दगी में कोई परिवर्तन आये।

न्यायपालिका की भूमिका

चूँकि न्यायपालिका राज्य के विधायी निर्णयों की बहाली में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि 'दो बच्चों की नीति' से संबंधित फैसले, 'जनसंख्या समस्या' की भ्रान्तिपूर्ण समझ और मानव अधिकार हनन के मामलों को किस प्रकार दिखाते हैं। न्यायपालिका 'अतिजनसंख्या' को एक सामाजिक कलंक और विभीषिका मानती है।

सुप्रीम कोर्ट के निर्णय से पहले राजस्थान, पंजाब और हरियाणा हाईकोर्ट पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधियों की तरफ से दायर की गयी याचिकाओं को निरस्त कर चुके थे। मुकेश कुमार

अजमेरा बनाम राजस्थान सरकार (एआईआर 1997 राजस्थान 250), मामले में 12 निर्वाचित पंचों ने अपनी–अपनी पंचायतों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के आदेश को चुनौती दी जिसमें उन्हें दूसरे के बाद और बच्चे पैदा होने पर अयोग्य घोषित कर दिया गया था। राजस्थान हाईकोर्ट ने अयोग्य घोषित करने के आदेश को एकदम निरस्त किया लेकिन इस आधार पर कि मुख्य कार्यकारी अधिकारियों ने प्रक्रिया का पालन नहीं किया था और अपनी रिपोर्ट को बढ़ा–चढ़ाकर कर पेश किया था। परन्तु अयोग्य घोषित करने के प्रावधानों की संवैधानिक स्थिति पर और जमीनी स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं में जनसंख्या के मुद्दे को लागू करने के मसले पर न्यायालय ने राज्य की अवस्थिति को सही ठहराया।

"विधायिका द्वारा ये प्रावधान जनसंख्या विस्फोट के खतरे को नियंत्रित करने के लिए अधिनियमित किये गये हैं," जजों ने यह कहते हुए साथ में कहा : "यह सामाजिक नीति सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए लोगों के कल्याण में वृद्धि करने, जीविका के उचित साधन प्रदान करने और पोषण के स्तर में वृद्धि करने के लिए बनायी गयी है।" इसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि बच्चों की संख्या के आधार पर अयोग्य घोषित करने का मुख्य उद्देश्य सरकार के 'परिवार नियोजन' कार्यक्रम को कानूनी आधार देना और साथ ही पंचायती राज का लक्ष्य, 'मान और सम्मान बनाये रखना और स्व–शासन की इकाई के रूप में काम करना,' जोकि हाशिये पर धकेल दिया गया था[2] को फिर से मुख्य धारा में लाने का था।

लोगों के व्यक्तिगत मामलों में न्यायपालिका के दखल का एक अन्य उदाहरण सुप्रीम कोर्ट के इस निर्णय में दिखाई पड़ता है जिसे इस नीति में कोई गलती नजर नहीं आती कि दो बच्चों के होते हुए तीसरी बार गर्भधारण होने पर एयर होस्टेसों की सेवा समाप्त कर दी जाती है, और कहा गया कि "...जब सारी दुनिया जनसंख्या विस्फोट की समस्या का सामना कर रही है तो यह न केवल इच्छित है बल्कि पूरी तरह से आवश्यक भी... ताकि अतिजनसंख्या के खतरे से निपटा जा सके जिस पर यदि नियंत्रण नहीं किया गया तो गंभीर सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ पैदा हो सकती हैं..." (एयर इण्डिया बनाम नरगेश मीर्जा और अन्य 1981)।

23 जुलाई 2003 को भारत के सुप्रीम कोर्ट ने हरियाणा के चुनावी हतोत्साही कानून की संवैधानिकता को बनाये रखते हुए हरियाणा में दो बच्चों की नीति पर सहमति की मुहर लगा दी। अपने फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "हमारे विचार से अयोग्य घोषित करने की अवधारणा राष्ट्रीय हितों में विकसित की गई है।" वास्तव में यह अजीब प्रकार का 'राष्ट्रीय हित' है जो बड़ी संख्या के लोगों को स्थायी तौर पर परिधि पर रखता है। पहले से ही हाशिये पर धकेले हुए समुदाय जैसे महिलाएँ, दलित, आदिवासी और गरीब इस प्रकार आसानी से राजनीतिक भागीदारी की प्रक्रिया से बाहर रखे जा सकते हैं।

---

2 सरकार, लोतिका और रामनाथन, उषा 'कोलैट्रल कन्सर्न्स'

भारत की 'बढ़ती हुई जनसंख्या' को एक राष्ट्रीय समस्या मानकर उसपर जोर देते हुए सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा, "लोकतंत्र के नाम पर जनसंख्या नियंत्रित करने में शिष्टता दिखाना एक महंगी कीमत होगी जो राष्ट्र को विनाश की ओर ले जायेगी।" यह फैसला इस भ्रान्तिपूर्ण मान्यता पर आधारित है कि दबावकारी जनसंख्या नीति और 'संख्या को नियंत्रित करना' विकास और जिन्दगी की बेहतरी का रास्ता है।

महिलाओं के सन्दर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "यह भी बताया गया कि इस प्रकार दोष लगाकर अयोग्य घोषित करने से सबसे ज्यादा महिलाएँ प्रभावित होंगी और जहाँ तक भारतीय समाज का सवाल है उन्हें कोई स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी और अगर उनके पति ऐसा चाहते हैं तो वे लगभग निस्सहाय होकर तीसरे बच्चे का भार उठाती हैं। इस विवाद में हमें लम्बे समय तक उलझे रहने की कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी को तीसरे बच्चे को जन्म देने के लिए बाध्य करता है वह अपनी पत्नी को ही नहीं अयोग्य बनाता बल्कि खुद भी अयोग्य हो जाता है। हमारा ऐसा सोचना है कि भारतीय ग्रामीण महिलाओं में जिस तरह की जागरूकता पैदा हो रही है उसे देखते हुए वे इतनी असहाय (नहीं) हैं कि उनके न चाहते हुए भी उन्हें तीसरे बच्चे को जन्म देने के लिए बाध्य किया जा सके। अन्त में यह कहना पर्याप्त होगा कि यदि विधायिका स्त्रियों के पक्ष में कोई अपवाद निकालना चाहे तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है परन्तु यह सिर्फ इसलिए असंवैधानिक नहीं हो जाता है कि स्त्रियों को अयोग्य घोषित करने से छूट नहीं दी गई है।"

जिन परिस्थितियों में महिलाएं रहती हैं उसका न्यायापालिका ने बिल्कुल गलत आकलन किया है। न्यायपालिका की समझ और सामाजिक सच्चाई में यह अलगाव हैरानी पैदा करता है। फैसले के अनुसार, भारतीय महिलाओं में बढ़ती जागरूकता के कारण वे इतनी असहाय (नहीं) हैं कि अगर वे नहीं चाहती हैं तो तीसरा बच्चा पैदा करने के लिए उन्हें बाध्य नहीं किया जा सकता। इसी संदर्भ में महिलाओं की स्वतंत्र एजेंसी की कमी को चिह्नित करते हुए संसद ने कुछ महीने पहले लिंग–निर्धारण–विरोधी कानून में संशोधन को स्वीकार कर लिया था जिसमें कि पति को, न कि पत्नी को लिंग–निर्धारण के लिए जिम्मेदार माना जाता है क्योंकि ज्यादातर मामलों में पत्नी के पास ज्यादा आजादी नहीं होती है।[3]

28 फरवरी 2005 को सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र और छह राज्य सरकारों, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश और हिमाचल प्रदेश को नोटिस जारी किया कि उन सभी लोगों के लोकसभा और विधानसभा चुनाव लड़ने पर रोक लगा दी जानी चाहिए जिनके दो से ज्यादा बच्चे हैं। इन सभी राज्यों में पंचायती राज अधिनियम लागू किया जा चुका है जिसके द्वारा दो बच्चों की नीति को व्यवहार में लाया जा चुका है। यह नोटिस मुख्य न्यायधीश आर.सी.

---

3 वृंदा करात, (2005) 'प्लानिंग वर्सेज पापुलेशन कंट्रोल, पीपुल्स डेमोक्रेसी', अगस्त

लाहोटी और न्यायधीश डी.एम. धर्माधिकारी को वकील रमेश कुमार हरिताश के जरिये की गयी अनिल कुमार हरिताश की अपील पर जारी किये गये थे। पंचायती चुनावों में दो बच्चों की नीति को बनाये रखने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लेख करते हुए अपील में कहा गया है कि चूँकि यह मानक पंचायती चुनावों में लागू है अतः इसे लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभा चुनावों में भी लागू किया जाना चाहिए।[4]

7 जुलाई, 2005 को दिल्ली हाई कोर्ट ने केन्द्र सरकार, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग और जनगणना आयोग को नोटिस जारी करके सरकार से दो बच्चों की नीति का स्वरूप बनाने और इसका उल्लंघन करके संसद, विधानसभा और स्थानीय निकायों का चुनाव लड़ने वाले लोगों पर रोक लगाने के दिशानिर्देश जारी करने को कहा।[5] इस अयोग्यता को ऐसे कानून में समाहित करना वास्तव में खतरनाक है जोकि शासन के विकेन्द्रित स्तर पर भागीदारी लोकतंत्र को प्रोत्साहित करने के मकसद के लिए बनाया गया हो। जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को जमीनी स्तर के शासन के लोकतंत्रीकरण के साथ जोड़ देने से स्थानीय प्रशासन और राजनीति में महिलाओं को एक सक्रिय भूमिका निभाते देखने की राज्य की मंशा की गंभीरता पर संदेह पैदा होता है।

आज तक हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के आये ज्यादातर फैसले एनपीपी 2000 के प्रतिकूल हैं जिसने दबावरहित लक्ष्य मुक्त रवैये का समर्थन किया था। जहां राज्य सरकारों ने इस बारे में राज्य की नीति निर्धारित करने के राष्ट्रीय निर्देशों की गलत व्याख्या की और उन्हें खुले तौर पर हल्केपन से लिया, वहीं पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा दाखिल शिकायतों पर फैसलों और कार्यवाही में न्यायपालिका की सामाजिक सच्चाइयों को समझने में कमी दिखाई पड़ी। सुप्रीम कोर्ट के फैसले अक्सर सामाजिक मूल्यों को समझने में असफल रहते हैं जैसे बेटे की प्राथमिकता और प्रजनन संबंधी अधिकारों के मामले में महिलाओं के लिए खुद निर्णय लेने का अभाव।

दूसरी तरफ, इससे सरकारों को फिर से माल्थसवादी सिद्धांत और 'जनसंख्या नियंत्रण' के लिए दबावपूर्ण व्यवहार अपनाने के लिए एक सुविधाजनक बहाना मिल जाता है। इस तरह के फैसले समान दर्जा और सभी व्यक्तियों के गौरव की भावना को खंडित करते हैं और गरीबों और हाशिये पर पड़े लोगों पर अनुशासन और दंड की अनियमित सच्चाइयों से दबाव डालते हैं। न्यायपालिक इस तरह की नीतियों में इन प्रयोजनमूलक समस्याओं को समझने में असफल रही है कि ज्यादा बच्चे पैदा करने का कारण गरीबी और सामाजिक विकास की कमी है न कि इससे उलट स्थिति है।

---

4 पीटीआई रिपोर्ट

5 दि हिन्दू, 7 जुलाई, 2005

निष्कर्ष

भारत में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जनसंख्या की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को समझने में नाकाम रही हैं। लोगों के सामान्य और प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य की जरूरतों को पूरा करने के बजाय उन्होंने ऐसी नीतियां बनायीं जो लोगों को और भी ज्यादा वंचित बनाती हैं। 'समस्या' के मूल कारण का मुकाबला करने की बजाय 'जनसंख्या नियंत्रण' के मुद्दे पर सतही तौर पर ध्यान देना अपने आप में एक भ्रांति प्रतीत होता है।

संवैधानिक संशोधन ऐसे होने चाहिए जो महिलाओं, दलितों और आदिवासियों को सम्मान प्रदान करें और राजनीतिक प्रक्रिया में सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिये पर रहे क्षेत्रों को स्थान देकर लोकतांत्रिक शासन को मजबूत बनाएं। पिछले दस सालों में इस कानून के परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक संस्थाओं में अब तक अल्प प्रतिनिधित्व करने वाले समाज के वर्गों की भागीदारी में बढ़ोत्तरी हुई है।[1] हालांकि यदि एक बार राज्य के पंचायती राज कानून में दो बच्चों की नीति के आधार पर दंडात्मक कार्रवाइयों को शुरू किया गया तो यह स्वयंमेव महिलाओं, युवाओं और समाज के कमजोर तबके से संबंध रखने वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोकेगा, जिससे उनकी राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी बाधित होगी। हतोत्साहित करने वाले प्रस्तावित प्रावधानों के कारण राज्य के कल्याणकारी कदमों को वापस लेने की अधिक मार कमजोर तबकों पर ही पड़ेगी।

जैसा कि हमारे अध्ययन से पता चलता है, अयोग्य घोषित उम्मीदवारों का अनुपात दलितों, आदिवासियों और महिलाओं की तरफ झुका हुआ है। बात सिर्फ इतनी ही नहीं है बल्कि इन मूक समूहों के स्वर को पहचानना भी काफी मुश्किल है क्योंकि वे अपनी शिकायतों को बताने से घबराते हैं। ज्यादातर लोग (और महिलाएं) बातचीत करने की अनिच्छुक होती हैं क्योंकि उन्हें ऊँची जाति के विरोधियों के जवाबी कार्रवाई करने का भय लगा रहता है; महिलाएं अपने पतियों से डरती हैं। कई लोग आर्थिक विपन्नता के कारण कानूनी कार्रवाइयों के आगे मूक बन जाते हैं।

इस प्रकार के दंडात्मक कदम 'जनसंख्या विस्फोट' और इसके लिए गरीबों के जिम्मेदार होने के प्रचलित मिथक पर आधारित हैं। यह मिथक सभ्य समाज के खातेपीते वर्गों में और यहां तक कि कुछ डॉक्टरों तक में इतने व्यापक रूप से फैला हुआ है कि वे लिंग–चयन गर्भपात, जबरन नसबंदी, जबरन गर्भपात आदि कदमों को 'जनसंख्या नियंत्रित करने' और इस प्रकार राष्ट्र की सेवा करने के लिए आवश्यक कदम मानते हैं।

इस प्रकार का दृष्टिकोण यह पहचानने में असफल रहता है कि जनसंख्या के आकार का

---

1 दास, अभिजीत (2005) टू चाइल्ड नार्म : हाऊस नैऐसरी एण्ड हाऊ जस्ट?

आर्थिक संपन्नता में कोई योगदान नहीं होता लेकिन इस पर काफी कुछ निर्भर करता है कि एक देश कितने प्रभावशाली ढंग से अपने लोगों पर खर्च करता है, उन्हें सामान्य और प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीतिक और आर्थिक अवसरों आदि के क्षेत्र में कितनी बेहतर सुविधाएं देता है। ये भूल जाते हैं कि इंसान की गरीबी की जड़ उसे ऐसे अवसर न मिलने में है और यह अनेक देशों में मौजूद रहेगी चाहे जनसंख्या का आकार और प्रजनन दर जो भी हो। वास्तव में हमारे देश में बेटे की इच्छा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की इच्छा पर भारी पड़ती है जैसा कि एक सरपंच ने अपने सरोकारों की चर्चा करते हुए कहा, "सरकार को उनके बारे में भी सोचना चाहिए जिनके केवल लड़कियां ही हैं। मेरे चार लड़कियां हैं। मैं एक लड़का होने की उम्मीद करता हूँ। सरपंच होने की बजाय मुझे एक बेटा पैदा होने पर ज्यादा खुशी होगी।" – इस प्रकार के कदम जैसे कि 'दो बच्चों की नीति' किसी भी तरह नीति–निर्माताओं की इस अवधारणा से मेल नहीं खाता कि इससे 'जनसंख्या–वृद्धि' पर 'नियंत्रण' हो जाएगा। इसके अलावा आधिकारिक तर्क जीवन और अवसर चुनने के मानवीय अधिकारों की रक्षा करने के संबंध में बिल्कुल शून्य हैं। यह विडंबना ही है कि आर्थिक विपन्नता के कारण बड़े परिवार रखना गरीबों की मजबूरी हो जाती है और इन परिस्थितियों में अयोग्य घोषित करने की यह रणनीति राजनीतिक क्षेत्र में भी असमानता और वंचना ले आएगी।

इसके अतिरिक्त 'जनसंख्या नियंत्रण' के संबंध में अनियंत्रित बल 'जनसंख्या वृद्धि' को स्थिर करने में कभी भी प्रभावी नहीं हो सकता। प्रजनन दर को प्रभावी ढंग से और स्वतः नीचे ले आने के कारक विकास के सामाजिक संकेतक होते हैं। 'जनसंख्या नियंत्रण' में इसके प्रकट योगदान के मकसद से इस नीति को अपनाते समय महिलाओं, कमजोर तबकों और नौजवानों पर इसके प्रभाव पर विचार नहीं किया गया था। इसने व्यक्तियों, खास कर महिलाओं जिन्हें सबसे अधिक भुगतना पड़ता है, के जनवादी अधिकारों और प्रजनन संबंधी चयन दोनों को बुरी तरह से प्रभावित किया है। यहां तक कि जब पतियों पर अयोग्य घोषित होने का खतरा पैदा होता है तो भी महिलाएं ही इस भेदभावपूर्ण नीति के दुष्परिणामों को छोड़ देने/परित्याग, तलाक, जबरन गर्भपात आदि के रूप में झेलती हैं, जबकि परिवार के आकार के बारे में या राजनीतिक शक्ति रखने के किसी भी मामले में उनकी कोई बात सुनी नहीं जाती है।

इसके अतिरिक्त ऐसी नीतियां जनसंख्या के 'अन्य' – कमजोर और हाशिये पर पड़े तबकों जैसे महिलाएं, दलितों, नौजवान और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों पर भार डालती हैं जो सत्ता और 'ज्ञान' के ज्ञानशास्त्रीय समुदाय से संबंध नहीं रखते हैं। इन परिस्थितियों में महिलाएं वस्तु के तौर पर बनी रहती हैं और कभी विकास का विषय नहीं बन पाती हैं। महिलाएं ही राज्य के लिए नसबंदी करने का लक्ष्य बनती हैं मानो कि वे एकमात्र प्रजननकर्ता हों क्योंकि पुरुष 'परिवार नियोजन' की जिम्मेदारियों में अपना हिस्सा निभाने से मना कर देते हैं। जन्म के लिए महिलाओं को जिम्मेदार ठहराया जाता है अतः नियंत्रण उन्हीं पर रखा जाता है; उनके शरीर और दिमाग पर; लिंग–चयनी गर्भपात द्वारा, लड़का पैदा न होने तक बार–बार गर्भधारण करने

और जबरन गर्भपात द्वारा, या, ऐसे पति द्वारा मुंह तक ना देखना और छोड़ देना जो अपने आपको तीसरे बच्चे के जन्म की जिम्मेदारी से मुक्त करना चाहता हो। बोझ हमेशा महिलाओं पर ही आता है, खासतौर पर इस मामले में प्रजनन आयु वर्ग की युवा महिलाओं पर जो ज्यादा मूक होती हैं और दोहरे तौर पर अरक्षित होती हैं। चूँकि वे तेजी से जनसांख्यकीय लक्ष्यों को प्राप्त करने का औजार बनती जा रही हैं अतः उनके बचने का कोई रास्ता नहीं बचता। उनके अस्तित्व के लिए खतरा और भी गंभीर हो जाता है और जीवित तथा अब तक अजन्मा शिशु दोनों समान रूप से खतरे में पड़ जाते हैं। इस प्रकार यह नीति पुरुष और महिलाओं के बीच और राज्य और इसके लोगों के बीच असमान सत्ता संबंधों को और मजबूत बनाती है।

आगे का रास्ता...

हमारे अध्ययन ने अयोग्य घोषित उम्मीदवारों की स्थिति के बारे में एक सूचनाप्रद मत प्रस्तुत करके दो बच्चों की नीति के खिलाफ हो रहे विरोध को मजबूती प्रदान करने की कोशिश की है। हमें खुशी होगी अगर हमारी इस छोटी सी कोशिश से इस नीति को समाप्त करने के लिए विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के प्रयासों को किसी तरह मजबूती मिले। हालांकि इन सबका मिला–जुला असर यह हुआ है कि इस गंभीर मुद्दे पर राज्य के कानून की समीक्षा शुरू हो गयी है।

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री को एक ज्ञापन सौंपा गया जिस पर उन्होंने राज्य विधानसभा के वर्तमान सत्र में एक अध्यादेश पारित करने का

Gaur gearing up to roll back two-child norm

Says law should apply across the country to all elected representatives

Special Correspondent

NEW DELHI: The Madhya Pradesh Chief Minister, Babulal Gaur, is getting ready to roll back the two-child norm, put in place by the previous Congress Government, for local body elected representatives in the State.

Addressing a Press conference in Delhi on Friday, Mr. Gaur said he would take up this issue with the Prime Minister at the meeting of the National Commission on Population on Saturday. "It was a progressive legislation. I have no problem with it. But there are numerous complaints that such a law should apply across the country to all elected representatives, including MLAs and MPs, and government servants, or the norm should be lifted for local body representatives," Mr. Gaur said. A sub-committee of the State Cabinet has been set up to look into this, he added.

His contention is that the law had created "social tensions' and "family tensions", even "leading to divorce in some cases", although he could not given any figure for divorces which had resulted directly from this legislation. The law apparently provides for invalidation of the election if the person elected has a third child. This, he said, had led to unprecedented situations with "elected local body representatives refusing to acknowledge the third child born to their wives as theirs for fear of being unseated."

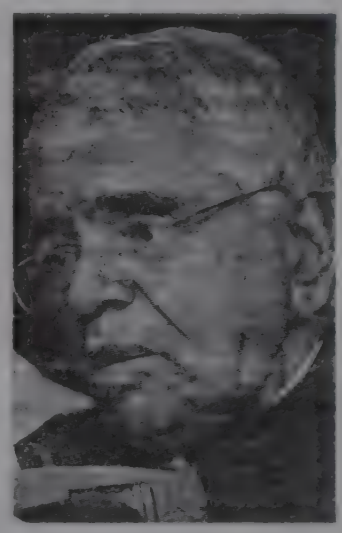

DETERMINED: *Madhya Pradesh Chief Minister Babulal Gaur at a Press conference in New Delhi on Friday.* PHOTO: V.V. KRISHNAN.

Strides in development

Claiming a giant leap forward on the development front, Mr. Gaur said a chronically power deficient State was on its way to power self sufficiency in the next two years. With good rains this year – which means farmers do not need electricity for tubewells -- "there is a 24-hour supply of electricity in Madhya Pradesh", he said.

The Indira Sagar Hydro Electricity Project has started generating 840 MW on July 13; a 2000 MW thermal power plant is proposed to be set up at Khandwa with cooperation of the Gujarat government; one additional unit of 500 MW in Birsignpur Thermal Power House will be synchronised by September 2006; a 520 MW Omareshwar project is underway; a 360 MW gas based power plant in the private sector has been proposed for Jhabua, and efforts were being made to resume construction of the 400 MW Maheshwar hydel power project.

He claimed that the Gokul Gram Yojana to convert existing villages into model ones -- with health and education facilities and generation of employment for the youth -- was a success with some other States wanting to replicate the model. "A total of 20,000 villages are to be identified, and each MLA has been asked to identify five in his constituency," Mr. Gaur said.

He carefully avoided any comment on the political affairs in the State, especially on former Chief Minister Uma Bharati's public declaration that she would remain active and involved in the State's affairs. He responded to questions on this with " I am not saying anything."

वादा किया है। हाल ही में एक संवाददाता सम्मेलन में उन्होंने घोषणा की कि वह मध्य प्रदेश में दो बच्चों की नीति को समाप्त करने के लिए अपनी पूरी कोशिश करेंगे और साथ ही कहा कि अगर यह कोशिश असफल रही तो वह इस कानून को देश भर के सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों पर लागू करने के लिए कहेंगे।

इस नीति पर पुर्नविचार की मांग कर रहे महिला संगठनों तथा स्वास्थ्य से जुड़े संगठनों के बढ़ते दबाव के बाद, अगला कदम राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के सामने अपील करना और नीति की समीक्षा के लिए एक जांच समिति गठित करवाना है। इस बीच, हालांकि मध्य प्रदेश राज्य इस मानक की समीक्षा कर रहा है, लेकिन महिलाओं पर अत्याचार बिना रुके जारी हैं।

कमेटी की रिपोर्ट के बाद हटेगा कानून

भोपाल। मध्यप्रदेश में पंचायत नगरीय निकायों के प्रतिनिधियों पर 26 जनवरी 2001 के बाद तीसरी संतान पैदा करने पर पद से हटाने संबंधी कानून को समाप्त करने के लिए राज्य सरकार एक अध्ययन कमेटी बनाएगी, जो इस नियम का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट पेश करेगी जिसके आधार पर प्रदेश सरकार इसे समाप्त करने का निर्णय लेगी।

मुख्यमंत्री ने रविवार को कार्यक्रम में यह घोषणा करते हुए कहा कि दिल्ली में हुई एक बैठक मे उन्होंने प्रधानमंत्री और केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री के सामने यह बात रखी थी कि जनसंख्या नियंत्रण के लिए मध्यप्रदेश सहित पांच राज्यों ने इस कानून को लागू किया था। हमारा कहना है कि यदि यह कानून सांसद और विधायकों पर भी लागू किया जाना चाहिए। वर्ना इसे किसी अन्य जनप्रतिनिधि पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। प्रदेश में इस कानून का परीक्षण करने जांच कमेटी बनाई गई है। कमेटी की रिपोर्ट आने के बाद इस कानून को समाप्त करने संबंधी निर्णय लिया जाएगा।

मुख्य मंत्री कार्यालय
मध्य प्रदेश

क्र.:4424/CMS/OPR/2005 भोपाल, दिनांक: 26/07/2005

प्रति,

श्री एन.बी.सरोजिनी,
SAMA,रिसर्च ग्रुप फार महिला व
स्वास्थ्य,G-19,द्वतीय तल,साकेत
नई दिल्ली- 110017 (भारत)

विषय :पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधिओं की दो बच्चो की
शर्त के संबंध में

उपरोक्त विषयक मान.मुख्यमंत्रीजी को प्रेषित पत्र/टीप दि.26/07/2005 प्राप्त हुआ, उक्त पत्र प्रमुख सचिव/सचिव, विधि और विधायी कार्य विभाग को आगामी कार्यवाही के लिए इस कार्यालय के जावक क्र.4424/CMS/OPR/2005 दि.26/07/2005 द्वारा प्रेषित किया गया है.

अवर सचिव
मुख्यमंत्री

मुख्य मंत्री कार्यालय
मध्य प्रदेश

क्र.:4423/CMS/OPR/2005 भोपाल, दिनांक: 26/07/2005

प्रति,

श्री एन.बी.सरोजिनी,
SAMA,रिसर्च ग्रुप फार महिला व
स्वास्थ्य,G-19,द्वतीय तल,साकेत
नई दिल्ली- 110017 (भारत)

विषय :पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधिओं की दो बच्चो की
शर्त के संबंध में

उपरोक्त विषयक मान.मुख्यमंत्रीजी को प्रेषित पत्र/टीप दि.22/07/2005 प्राप्त हुआ. उक्त पत्र प्रमुख सचिव/सचिव, पंचायत और ग्रामीण विभाग को आगामी कार्यवाही के लिए इस कार्यालय के जावक क्र.4423/CMS/OPR/2005 दि.26/07/2005 द्वारा प्रेषित किया गया है.

अवर सचिव
मुख्यमंत्री

16/8/05

मुख्य मंत्री कार्यालय
मध्य प्रदेश

क्र.:4422/CMS/OPR/2005 भोपाल, दिनांक: 26/07/2005

प्रति,

श्री एन.बी.सरोजिनी,
SAMA,रिसर्च ग्रुप फार महिला व
स्वास्थ्य,G-19,द्वतीय तल,साकेत
नई दिल्ली- 110017 (भारत)

विषय :पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधिओं की दो बच्चो की
शर्त के संबंध में

उपरोक्त विषयक मान.मुख्यमंत्रीजी को प्रेषित पत्र/टीप दि.22/07/2005 प्राप्त हुआ. उक्त पत्र प्रमुख सचिव/सचिव, महिला एवं बाल विकास विभाग को आगामी कार्यवाही के लिए इस कार्यालय के जावक क्र.4422/CMS/OPR/2005 दि.26/07/2005 द्वारा प्रेषित किया गया है.

अवर सचिव
मुख्यमंत्री

संदर्भ

1. एक्शन इंडिया : राइजिंग संस, सेटिंग डॉटर्स, डिक्लाईनिंग सैक्स रेशियो
2. एडवा पब्लिकेशन सीरीज : पापुलेशन पालिसी एंड विमेन्स हेल्थ, 1998
3. बख्शी, उपेन्द्र : सेंस एंड सेंसिबिलिटी, www.india-seminar.com: 2005
4. भगत, पामेला : इंडियानेस्ट.कॉम : वुमैन : डिच्ड फीमेल फोईट्यूसेज, 18 जुलाई, 2002
5. भाटिया, रजनी : टेन इयर्स आटर कैरो : दि रिसर्जेंस आफ कोएर्सिव पापुलेशन कंट्रोल इन इंडिया, डिफरेंटटेक्स नं. 31–2005
6. बोस, आशीष : इंडियाज बिलियन प्लस पिपुल, अप्रैल 2001
7. बुच, निर्मला : लॉ आफ टू–चाईल्ड नोर्म इन पंचायत्स : इंप्लिकेशंस, कॉनसिक्वेंसेज एंड एक्सपियरेंसेज, इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, जून 11–17, 2005
8. सेंसस आफ इंडिया, 2001
9. सेन्ट्रल क्रानिकल : पापुलेशन शुड हेव ए वेलफेयर–ओरियंटेड अप्रोच, 12 जुलाई 2004
10. चयनिका, स्वतिजा एंड कामाक्षी : वी एंड अवर फर्टिलिटी : दि पालिटिक्स ऑफ टेक्नोलोजिकल इंटरवेंशन, 1998
11. कोरिया, सोनिया : पापुलेशन एंड रिप्रोडक्टिव राईट्स, फेमिनिस्ट पर्सपेक्टिव्स फ्राम दि साउथ, काली फार विमेन, जून, 1994
12. दैनिक जागरण : सन्तान ने छीनी माता–पिता की सरपंची, 4 अप्रैल, 2004
13. दास, अभिजीत : टू चाइल्ड नार्म : हाउ नेसेसरी एंड हाउ जस्ट? www.sahyogindia.com:
14. दास, अभिजीत : टू चिल्ड्रन, काउंटलैस रोंग्स, www.indiatogether.org: अक्टूबर 2003
15. डेकन हेराल्ड : स्टॉप सेक्स सेलेक्टिव एबोर्शंस, स्टाप फीमेल फीटिसाइड, 24 अगस्त, 2004
16. देशबंधु : जनसंख्या नीति समाज हित में नहीं, 12 जुलाई, 2004
17. द्विवेदी, राधेश्याम : मध्यप्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम (हिन्दी), सुविधा लॉ हाऊस प्राईवेट लिमिटेड
18. इकानोमिक टाइम्स : शुड देअर वी ए टू चाईल्ड नार्म? 18 अक्टूबर, 2004

19. ग्रीयर, जर्मेन : दि होल वूमन, एंकर पब्लिकेशंस 2000

20. गुप्ता, दीपांकर : इन्टेरोगैटिंग कॉस्ट, अंडरस्टैंडिंग हाएरार्की एंड डिफरेंस इन इंडियन सोसायटी, 2000

21. गुरुंग, मधु : दि टू–चाइल्ड नार्म ओनली लीड्स टू फीमेल फीटिसाइड, इन्फो चेंज इंडिया

22. हार्टमैन, बेट्सी : रिप्रोडक्टिव राईट्स एंड रोंग्स : दि ग्लोबल पोलिटिक्स आफ पापुलेशन कंट्रोल एंड कोन्ट्रासेप्टिव च्वाइस, हार्पर एंड रॉ, न्यूयार्क, 1987

23. अय्यर, पल्लवी : 25 इयर्स लेटर, चाइना वांट्स मोर चिल्ड्रन : www.indianexpress.com:

24. जनसत्ता : तीसरी संतान की छूट, 20 जून, 2004

25. वृंदा करात, प्लानिंग वर्सेज पापुलेशन कंट्रोल, पीपुल्स डेमोक्रेसी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) का साप्ताहिक मुखपत्र, अगस्त 2005

26. कारकल, मालिनी : पापुलेशन कंट्रोल : दि इंडियन एक्सपिरिअंस, दि ग्रीन लेट वीकली होमपेज

27. लिविंगस्टोन, ब्रेंडन : दि वन चाइल्ड पालिसी : एन इकानामिक एनालिसिस

28. महाबल, कामायनी बाली : सेक्स सेलेक्शन इज एब्यूज आफ जेनेटिक डायग्नोस्टिक टेक्नोलोजी www.expresshealthcaremgmt.com

29. महिला चेतना मंच : पंचायती राज एंड दि "टू–चाईल्ड नोर्म" : इंप्लीकेशंस एंड कान्सीक्वेंसेज,
जनवरी 2003

30. मल्लिक, रूपसा : ए लेस वेल्यूड लाईफ : पापुलेशन पालिसी एंड सेक्स सलेक्शन इन इंडिया, अक्टूबर 2002

31. मैथ्यू, जार्ज : पंचायती राज इंस्टीट्यूशंस एंड ह्यूमन राईट्स, पीयूसीएल बुलेटिन, मार्च 2003

32. मूर्ति, लक्ष्मी : नो किडिंग : अपेक्स कोर्ट इंफोर्सेज टू–चाईल्ड नार्म, InfoChangeindia.org

33. मूति, लक्ष्मी : दि पापुलेशन "प्राब्लम" एक्सप्लोडिंग मिथ्स, IndiaNest.com

34. नंदा, ए.आर. : दि न्यू पैराडिग्म आफ डेवलेपमेंट एंड सेक्स सलेक्शन पर एक सेमिनार में पढ़ा गया पेपर

35. नवभारत टाइम्स : जनसंख्या वृद्धि के पक्ष में, 21 जून, 2004

36. पारेख, आंगना : ओनली टू चिल्ड्रेन, ओर एल्स? सोसायटी, 28 जुलाई, 2002

37. पटेल, विभूति : ए कल्चरल डेफिसिट, www.indiatogether.org

38. फिलिपोस, पामेला : हेल्थ हेज नाउ बिकम फेमिली प्लानिंग, www.expressindia.com

39. प्रेमी, महेन्द्र कु. एंड राजु सरस्वती : बोर्न टू डाई : फीमेल इंफेंटिसाईड इन मध्यप्रदेश, सर्च बुलेटिन, जुलाई–सितंबर, 1998, पृष्ठ 94–105

40. राजलक्ष्मी, टी.के. : ए बैटल वॉन, फ्रंटलाईन, वाल्यूम 22 – इश्यू 11, जून 2003

41. राजलक्ष्मी, टी.के. : पापुलेशन पालिसी, विक्टिम्स आफ कोएर्शियन : www.hinduonnet.com:

42. राव, मोहन : ए वाईस आफ सेनिटी, फ्रंटलाईन, 27 सितंबर, 2002

43. राव, मोहन : एंटी–पीपुल स्टेट पापुलेशन पालिसीज : www.delhiscienceforum.org:

44. राव, मोहन : फीमेल फोईटीसाईड : व्हेयर डू वी गो? www.issuesinmedicalethics.org:

45. राव, मोहन : फ्रॉम पॉपुलेशन कंट्रोल टू रिप्रोडक्टिव हेल्थ–माल्थिशियन अर्थमेटिक, 2004

46. रेगे, शर्मिला : सोशियोलाजी आफ जेंडर, दि चैलेंज आफ फेमिनिस्ट सोशियोलोजिकल नॉलेज, 2003

47. रॉय, टी.के. : एनालिसिस आफ इंडियाज पापुलेशन पालिसी : एन एक्सपिरियंस आफ फाईव डिकेड्स, आईएएसएसआई क्वार्टली, 16, 1997

48. सहेली रिपोर्ट : इनफ इज इनफ, इंजेक्टेबल कोन्ट्रासेप्टिव नेट एन : ए क्रानिकल आफ हेल्थ हेजार्ड्स फोरटोल्ड, 11 जुलाई, 1999

49. समा : जनसंख्या नीति, किसका नुकसान, किसका फायदा? 2003

50. समा : मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री को ज्ञापन, 11 जुलाई, 2003

51. समा : रिप्रोडक्टिव हेल्थ सर्विसेज–द ट्रांजिशन फ्राम पालिसी डिस्कोर्स टू इंप्लीमेंटेशन इन रिव्यू आफ हेल्थ केयर इन इंडिया; गंगोली, लीना वी, दुग्गल रवि एंड शुक्ला अभय, सेहत, जनवरी, 2005

52. समा : अनविल्ड रियलिटीज, 2003

53. सरकार लतिका एंड रामनाथन उषा : कोलैट्रल कन्सर्न्स

54. सरोजिनी एन.बी. : कैम्पेन अंगेस्ट इंजेक्टेबल कॉन्ट्रासेप्टिव्स, 2000

55. सेनगुप्ता, अमित : लेमेंटेशंस ऑन दि बिलियंथ बेबी

56. सेनगुप्ता, अमित : पापुलेशन पालिसीज – सर्विंग दि "सेक्योरटी इंट्रेस्ट्स" आफ दि यू. एस.

57. शिव कुमार ए.के. : पॉपुलेशन स्टेबिलाईजेशन : व्हाई पेनल्टीज आर मीनिंगलेस?

58. सुब्रमण्यम चित्रा : परिवार नियोजन का साधन बना पंचायत

59. दि हिन्दू : आडवाणी फॉर इन्फोर्समेंट आफ टू–चाइल्ड नार्म, 19 मार्च, 2004

60. दि हिन्दू : नो कोएर्सिव पॉपुलेशन पालिसी, 21 दिसंबर, 2004

61. दि हिन्दू : पॉपुलेशन पालिसी शुड वी रिप्लेस्ड बाई पालिसी आन डेवलेपमेंट, 12 जुलाई, 2004

62. दि पायनियर : बीटिंग चाइना, 28 अगस्त, 2003

63. दि टेलीग्राफ : ए न्यू इमरजेंसी : अगस्त 24, 2003

64. टाइम्स आफ इंडिया : वेटेड अगेंस्ट विमेन : 9 अगस्त, 2002

65. ट्रिब्यून न्यूज सर्विस : रिजर्व टू–चाइल्ड नार्म, 5 अप्रैल, 2005

66. विज, अंजली : सोशियोकल्चरल एटीट्यूड्स टूवार्ड्स इन्फर्टिलिटी एंड अस्सिटेड रिप्रोडक्शन इन इंडिया, 2001

67. www.crip.org: चाईना टर्न्स वन–चाईल्ड पालिसी इनटू ला

68. www.thehindu.com: टू–चाईल्ड नार्म ब्रिंग्स लिटिल रिलीफ फार वुमैन, 2 जुलाई, 2003

69. www.thehinduonnet.com: नो गर्ल्स, प्लीज, वी'आर इंडियंस!

समा हर तरह के भेदभाव का विरोध करती है। वह समानता पर ज़ोर देते हुए, वंचित समुदाय की महिलाओं के सशक्तिकरण और उनके अधिकारों के प्रति निष्ठा रखती है।

समा का मुख्य कार्य प्रशिक्षण देना, क्षमता को बढ़ाने में सहायता पहुँचाना, पठन–सामग्री तैयार करना, शोध, समर्थन और इससे सम्बन्धित संपर्क सूत्रों को बढ़ाना है।

समा

महिलाओं और स्वास्थ्य के लिए संदर्भ समूह